मेडिकल भ्रष्टाचार पर भारत की पहली पुस्तक

हॉस्पिटल से जिन्दा कैसे लौटें

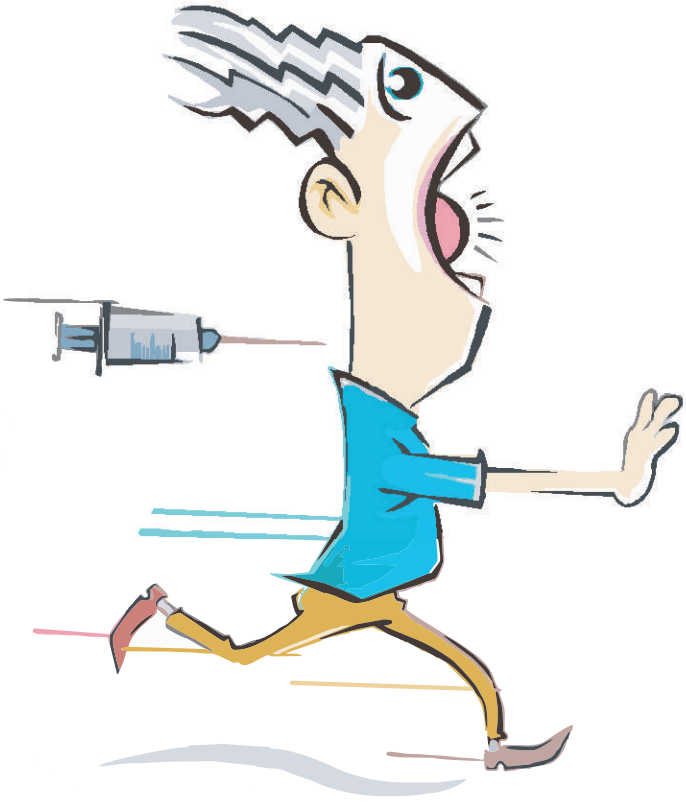

www.biswaroop.com

डॉ. बिस्वरूप रॉय चौधरी

स्वास्थ्य उद्योग का सच जो बदल देगा आपकी जीवन शैली

हॉस्पिटल से जिन्दा कैसे लौटें

डॉ. बिस्वरूप राय चौधरी

© डॉ. बिस्वरूप राय चौधरी

रिसर्च एण्ड डेवलपमेंट/संपादन : रचना शर्मा
संपादकीय सलाहकार : रचना भोला 'यामिनी'
प्रूफ रीडिंग : प्रतीक्षा वत्स, अनुपमा शर्मा
टाइप सैटिंग : सुषमा कुमारी
कवर डिजाइनिंग : शंकर सिंह कोरंगा

संस्करण : 2012
प्रकाशक : डायमन्ड पॉकेट बुक्स

समर्पण

मेरे आदरणीय माता- पिता को सादर समर्पित,
जो मेरे क्रियात्मक लेखन की प्रेरणा के स्त्रोत रहे हैं।

सच को सामने लाओ

कुछ समय पूर्व स्वामी रामदेव जी से हुई व्यक्तिगत भेंट के दौरान उनकी एक बात ने मुझे विशेष रूप से प्रभावित व प्रेरित किया। उन्होंने मुझसे कहा 'सच को सामने लाओ '।

जीवन का सबसे बड़ा सच है मृत्यु और आपने भी ध्यान दिया होगा कि जब हम किसी के निधन पर हुए शोक समारोह में जाते हैं तो अधिकतर व्यक्ति मृतक के परिवारजन से एक ही बात पूछते दिखाई देते हैं कि उसकी मृत्यु किस रोग से हुई है? हमें पूरी तरह से यह विश्वास हो चला है कि जब भी किसी की मृत्यु होगी तो किसी न किसी रोगवश ही होगी। हम यह भूल गए हैं कि मृत्यु जीवन से प्राकृतिक रूप से संबंध रखती है। इस आधुनिक युग में प्राकृतिक रूप से होने वाली मृत्यु लगभग दुर्लभ होती जा रही है। मनुष्य या तो किसी रोग से मरता है या फिर किसी दुर्घटना में उसके प्राण जाते हैं।

क्या कभी आपने विचार किया कि अधिकतर व्यक्तियों के जीवन के अंतिम दिन इतने रोगों व कष्टों से भरे हुए क्यों रहने लगे हैं? क्या कभी आपने विचार किया कि मनुष्यों व अन्य जीवों की बायोकैमिस्ट्री व जीवन के बुनियादी नियम एक से होने के बावजूद मनुष्य ही डायबिटीज, कैंसर, दिल के रोगों व उच्च रक्तचाप जैसी जीवनशैली जनित रोगों के कारण क्यों मरता है? क्या कभी आपने सुना कि कोई बिल्ली कैंसर से मर गई या किसी कुत्ते को उच्चरक्तचाप के लिए दवा खानी पड़ रही है? केवल मनुष्य की एकमात्र ऐसा जीव है जो 12500 रोगों की चपेट में है। प्रकृति के दूसरे जीवों को ये रोग छू भी नहीं पाते क्योंकि वे प्रकृति की गोद में, उसके सहचर्य में जीते आए हैं।

इन सभी प्रश्नों पर बार-बार विचार करने की आवश्यकता है। मैंने भी यही किया जिसके परिणामस्वरूप इस पुस्तक का जन्म हुआ। यह पुस्तक अनेक अस्पतालों, डॉक्टरों, मेडीकल संस्थानों व मेडीकल विश्वविद्यालयों से प्राप्त अध्ययनों, रिपोर्टों, सर्वेक्षणों व जांचों पर आधारित है।

मैं अपने पाठकों से यह वादा तो नहीं कर सकता कि वे इस पुस्तक को पढ़ने के बाद हमेशा जीवित रहेंगे या अमर हो जाएंगे। हां, यह भरोसा अवश्य दे सकता हूं कि यदि उन्होंने इस पुस्तक में दिए गए उपायों व सुझावों का पालन किया तो वे निश्चित रूप एक लंबा व स्वस्थ जीवनकाल पाएंगे व उनके जीवन का अंतिम काल कष्ट व रोगों से रहित होगा।

– बिस्वरूप राय चौधरी

विषय-सूची

1. बीमारी- एक व्यापार.....9
2. बीमारी का गणित.....17
3. रोगों का मायाजाल 25
4. अनावश्यक चिकित्सा व जांच.....37
5. साइट इफेक्ट का कड़वा सच.....45
6. कोख से क्रब तक (भाग-1).....51
7. कोख से क्रब तक (भाग-2).....63
8. कोख से क्रब तक (भाग-3).....75
9. बीमारी का अर्थशात्र.....83
10. उपाय की ओर 89
11. सुपर फास्ट हीलिंग.....99

''मुझे लगता है, दवाइयां ही सबसे अच्छा व्यापार हैं क्योंकि भले ही आप किसी को स्वस्थ करें या न करें, आपको आपके पैसे तो मिल ही जाएंगे।''

– *मॉलीकर*

अध्याय-1

बीमारी- एक व्यापार

पुस्तक का शीर्षक न केवल भ्रामक अपितु चौंका देने वाला भी है। हम तो ऐसी बात सोच भी नहीं सकते। जरा सा कोई रोग होते ही सबसे पहले हम डॉक्टर या अस्पताल के दर पर माथा टेकने पहुंच जाते हैं। वहां जाते ही हमें लगता है कि हम अपने मसीहा के पास पहुंच गए और अब किसी तरह की चिंता या परेशानी नहीं रही किंतु यह पुस्तक तो जैसे हमारी सदियों पुरानी मान्यताओं व विश्वास पर करारी चोट करने वाली है। यह हमें बताने वाली है कि हॉस्पिटल से जीवित कैसे लौटें मानो अस्पताल रोगमुक्ति का कोई केंद्र नहीं बल्कि यमराज का घर हो!

दरअसल अब तक सामने आए आंकड़े तो यही बताते हैं कि अस्पताल जाने पर प्राय: मरने की संभावना कई गुना बढ़ जाती है यानी यदि आपकी निकट भविष्य में मरने की संभावना नहीं भी है, तो भी वहां का वातावरण, अवस्थाएं, डॉक्टरों व कर्मचारियों द्वारा जाने-अनजाने में की गई भूलें आपको यमराज के द्वार तक पहुंचाने की भूमिका रच देती हैं। जरा अस्पताल में होने वाली इन सामान्य भूलों पर एक नज़र डालें:

पहला मामला : 17 साल की सुनैना की मौत हार्ट ट्रांसप्लांट के दो सप्ताह के भीतर ही हो गई। आप कहेंगे कि इसमें भला इतनी हैरानी की क्या बात है। ऐसा तो किसी के भी साथ हो सकता है। हो सकता है कि उसकी इतनी ही आयु शेष थी या उसे ऑपरेशन सूट नहीं किया। यदि ऐसा होता तो संभवत: हम भी अपने मन को तसल्ली दे देते किंतु कारण यह था कि सर्जन ने यह गौर ही नहीं किया कि सुनैना का ब्लड ग्रुप, लगाए गए हार्ट से मैच ही नहीं कर रहा था। सर्जन की एक भूल ने 17 साल की उस युवती को सदा के लिए मौत की नींद सुला दिया।

दूसरा मामला: 47 वर्षीय रामलाल अपने बाएं टेस्टीकल में दर्द और सिकुड़न की वजह से अस्पताल में भर्ती थे। सर्जन ने आशंका जताई कि यह कैंसर हो

सकता है और बांया टेस्टीकल निकालने का फैसला किया परंतु गलती से दायां स्वस्थ टेस्टीकल निकाल दिया। अब इस भूल को आप क्या कहेंगे?

तीसरा मामला: 49 वर्षीय कमलकांत जब अस्पताल में भर्ती हुए तो उनके पेट में ट्यूमर था। सर्जरी से ट्यूमर निकाल दिया गया परंतु सर्जन गलती से कैंची पेट में ही भूल गए। भले ही आपको यकीन न आए किंतु यह बात पूरी तरह से सत्य है। एक साल बाद एक और सर्जरी से कैंची को निकाला गया परंतु तब तक कैंची पेट में इतने घाव कर चुकी थी कि पेट से कैंची निकालने के दो माह के भीतर ही कमलकांत चल बसे।

चौथा मामला : 67 वर्षीय मारिया को एंजियोप्लास्टी के लिए अस्पताल ले जाया गया। एंजियोप्लास्टी के बाद गलती से उनको अपने ही वार्ड या बेड में ले जाने की बजाए दूसरे फ्लोर में ले जाकर लिटा दिया गया। दूसरे दिन अस्पताल के कर्मचारी मारिया को ऑपरेशन थिएटर ले गए क्योंकि उस फ्लोर पर ऑपरेशन के लिए ले जाए जाने वाले मरीजों को लिटाया जाता था नतीजन डॉक्टरों ने ओपन हार्ट सर्जरी के लिए मारिया के सीने को चीर दिया। तभी एक और डॉक्टर ने फोन से संदेश भिजवाया कि यह मरीज तो हस्पताल से छुट्टी लेने के लिए तैयार है और इनके हार्ट में कोई परेशानी थी ही नहीं। तब मारिया का सीना सिलाई कर उसे अस्पताल से विदा कर दिया गया।

पांचवा मामला : जरा 52 वर्षीय सत्यश्याम की करुण गाथा भी सुन लें। सर्जन ने भूल से बाएं की बजाए दायां पांव काट डाला और ऑपरेशन थिएटर में जब तक सर्जन अपनी यह भूल समझ पाते, तब तक बहुत देर हो चुकी थी।

छठा मामला: 35 वर्षीया प्रथा की दाई किडनी में ट्यूमर पाया गया। डॉक्टरों ने यह आशंका जताई कि यह ट्यूमर कैंसर हो सकता है इसलिए दाई किडनी को निकालने का फैसला लिया परंतु ऑपरेशन के दौरान सर्जन ने गलती से बाई किडनी निकाल दी। अगले दिन निकाली गई किडनी में से जब पैथोलॉजिस्ट्स को कोई भी कैंसरयुक्त सेल नहीं मिले तब भूल समझ में आई कि प्रथा की गलत किडनी निकाल दी गई थी।

सातवां मामला : 73 वर्षीय श्रीमन को पेट दर्द के कारण अस्पताल में भर्ती किया गया। चार दिनों तक जांच-पड़ताल के बाद भी जब डॉक्टर किसी नतीजे पर नहीं पहुंचे तो खोजबीन सर्जरी का निर्णय लिया गया। ऑपरेशन से पहले बेहोशी के लिए एनस्थीसिया दिया गया, परंतु एनस्थीसिया ने पूरी तरह से अपना प्रभाव नहीं दिखाया और नतीजन श्रीमन एक ऐसी स्थिति में चले गए कि वह न तो पूरी तरह से होश में रहे और न ही बेहोशी में। यह एक ऐसी स्थिति थी जब रोगी सर्जरी का दर्द अनुभव तो कर सकता है परंतु हाथ-पैर हिलाकर या डॉक्टर को बोलकर नहीं बता सकता। कहा जाता है कि यह दर्द मौत के दर्द से भी ज्यादा दर्दनाक होता है। शायद यही वजह रही कि सर्जरी के एक ही सप्ताह के भीतर श्रीमन ने आत्महत्या कर ली। उन्हें ऐसी दर्दनाक जिंदगी से मौत का सामना करना कहीं ज्यादा आसान लगा। उनके परिवार वालों का कहना है कि श्रीमन के लिए वह सब सहन करना असहनीय हो रहा था।

आठवां मामला: 34 वर्षीया नैंसी ने तय किया कि वह गर्भाधान के लिए इनविट्रो फर्टिलिटी के माध्यम का प्रयोग करेगी किंतु जब शिशु ने जन्म लिया तो सभी यह देख कर हैरत में पड़ गए कि गोरे माता-पिता के घर सांवले शिशु ने कैसे जन्म लिया। डीएनए टेस्ट के बाद उन्हें पता चला कि यह सब डॉक्टरों की ही गलती का परिणाम था। उन्होंने किसी दूसरे पुरुष का वीर्य नैंसी के गर्भाशय में प्रविष्ट करवा दिया था।

निष्कर्ष:-

आप भी इन चौंका देने वाले व शर्मनाक मामलों को पढ़ कर हैरत में पड़ गए होंगे। दूसरा चौंका देने वाला तथ्य यह है कि यह सब तो भारत सहित दुनिया भर के सभी अस्पतालों के लिए आम बातें हैं। उन्हें कभी महसूस नहीं होता कि जो लोग उन पर पूरा विश्वास करते हुए वहां तक आए हैं, उनके जीवन के प्रति भी उनका कोई उत्तरदायित्व हो सकता है।

हम आपको जर्नल ऑफ हेल्थ अफेयर्स के माध्यम से बता रहे हैं कि विभिन्न

देशों के अस्पतालों में इस तरह की होने वाली भूलों की संभावना का क्या प्रतिशत है:

देश	मेडिकल भूलों की संभावना का प्रतिशत
ब्रिटेन	18 प्रतिशत
ऑस्ट्रेलिया	23 प्रतिशत
न्यूजीलैन्ड	23 प्रतिशत
कनाडा	25 प्रतिशत
यूएसए	28 प्रतिशत

अब आप जानना चाहेंगे कि भारत में कितनी प्रतिशत सर्जरी में इस प्रकार की चिकित्सीय भूलें होती हैं। सच्चाई तो यह है कि हमारी सरकार ने भारतीय अस्पतालों में कभी भी ऐसे शोधों में रुचि ही नहीं ली किंतु विश्वस्त सूत्रों की मानें तो कह सकते हैं कि भारत के अस्पतालों में सर्जरी में लगभग 40 प्रतिशत तक भयंकर मेडीकल भूलें होने की संभावना है।

यूएसए के औपचारिक तथ्यों के अनुसार इन देशों में मौत का सबसे बड़ा कारण कोई बीमारी नहीं बल्कि अस्पतालों में घटी भूलें हैं जिन्हें हम तकनीकी भाषा में 'एट्रोजेनिक डेथ' कहते हैं।

जर्नल ऑफ अमेरिकन मेडिकल एसोसिएशन, वोल्यूम 284, जुलाई 2000 के लेख, 'डेथ फ्रॉम एट्रोजेनिक कौजिज (चिकित्सकजनित भूलों)' के अनुसार हर साल यूएस के अस्पतालों में मारे जाने वाले लोगों की संख्या निम्नलिखित है:

संख्या	कारण
12,000	अनावश्यक सर्जरी
7000	गलत दवाईयां
20,000	अस्पताल में घटी अन्य भूलें
80,000	अस्पतालों में होने वाले संक्रमण
1,06,000	सही दवाओं के दुष्प्रभाव

भारत की बात करें तो एक अनुमान के अनुसार, अस्पताल में हुई तीन में से दो मौतों का कारण अस्पताल की लापरवाही और दवाइयों से होने वाले दुष्प्रभाव हैं। यदि आपको भारत के अस्पतालों में होने वाली इन मौतों के शर्मनाक तथ्यों पर विश्वास नहीं होता तो जरा कुछ और नज़ारे भी देख लें। हम आपको चिकित्सा जगत से जुड़े कुछ लोगों से मिलवाने जा रहे हैं। भारत के प्रतिष्ठित इंडियन मेडिकल एसोसिएशन में तीन लाख से अधिक डॉक्टर सदस्य हैं। इसे भारत के आधुनिक मेडीसिन का बैकबोन भी कहा जाता है। सन् 2008 में इंडियन मेडीकल एसोसिएशन ने टी वी पर एक विज्ञापन के माध्यम से ट्रोपिकाना जूस पीने की सिफारिश की और कहा कि वह सेहत के लिए बहुत लाभदायक है। जबकि सच्चाई तो यह है कि अगर आप जूस में डाली गई सामग्री की जांच करें तो पाएंगे कि वह सेहत के लिए बेहद नुकसानदायक है। यह किस्सा यहीं समाप्त नहीं होता। जरा हमारे साथ कुछ बड़े व निजी अस्पतालों के रसोईघरों में झांके तो पाएंगे कि मरीजों को फलों के जूस के नाम पर पैक्ड और केमीकल युक्त जूस दिए जा रहे हैं, जो कि रोगियों के नाजुक रोग प्रतिरोधक तंत्र के लिए जहर का काम करते हैं।

बेशक फलों का जूस सेहत के लिए अच्छा होता है किंतु पैक्ड एंड प्रोसेस्ड जूस सेहत के खराब होने का कारण बन जाते हैं। उसी प्रकार माइक्रोवेव द्वारा पकाया गया भोजन डायबिटीज, कोलेस्ट्रॉल, हार्ट डिज़ीज और कैंसर जैसे जानलेवा रोगों का कारण बन जाता है। माइक्रोवेव खाने की नमी या वॉटर मोल्यूकलस को एक सेकेंड में लाखों बार वाइब्रेट करता है, जिससे गर्मी पैदा होती है और खाना गरम हो जाता है लेकिन साथ ही वॉटर मोल्यूकलस का केमिकल स्ट्रक्चर अस्वभाविक रूप से बदल जाता है, जो कि हमारे शरीर में जाकर जहर के रूप में काम करता है। अब विचार करने की बात यह है कि ऐसे खाने का सेवन करके रोगी बना व्यक्ति जब अस्पताल पहुंचता है तो उसे वहां भी माइक्रोवेव से पका या गरम किया गया भोजन ही परोसा जाता है यानी इलाज के साथ-साथ रोग के दोबारा पनपने या बने रहने का कारण भी परोसा जा रहा है। संभवत: हमारे देश के चिकित्सक भी आम आदमी की तरह इन सभी कारणों को निरंतर नजरंदाज करते हैं, यही कारण है कि स्वयं चिकित्सक ही एक आम आदमी की अपेक्षा अधिक रोगी पाए जाते हैं।

हाल ही में, मेरे दल ने भारत के सबसे श्रेष्ठ व अच्छे माने जाने वाले टॉप 10 अस्पतालों के ओबेसिटी (मोटापा) विभाग के प्रमुखों की सेहत का जायजा लिया और पाया कि 10 में से 9 प्रमुख तो स्वयं ही मोटापे से ग्रस्त हैं। अब आप ही सोचें कि जो इंसान स्वयं मोटापे की मार झेल रहा है, वह भला किसी दूसरे को पतला होने की क्या सलाह देगा? यदि भारत का सबसे बड़ा मधुमेह का डॉक्टर स्वयं ही मधुमेह का रोगी होगा तो वह अपने रोगियों की चिकित्सा क्या खाक करेगा?

आप किसी भी बड़े निजी अस्पताल में जाइए, अस्पताल के अंदर ही फास्ट फूड के रेस्त्रां मिल जाएंगे हालांकि यह सिद्ध हो चुका है कि वर्तमान जीवनशैली से जुड़े अधिकतर रोगों का प्रमुख कारण फास्ट फूड ही होता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि प्राइवेट अस्पतालों में बीमारी के नाम पर पैसा कमाने का ऐसा कारोबार आरंभ हो चुका है, जिसकी तेजी से बढ़ने की संभावनाएं सौ प्रतिशत से भी अधिक हैं।

इस प्रचलित मुहावरे पर ध्यान दें:

''आज इंसान अपने 50 साल की बचत को जीवन के आखिरी 50 दिनों में ही खुद को मौत से बचाने में खर्च कर देता है।''

नि:संदेह अस्पताल का व्यापार एक उन्नत व्यापार बन गया है।

याद रखिए, आपके बीमार पड़ने, बीमार रहने और उस बीमारी के लंबे समय तक चलते रहने में ही अस्पतालों और कुछ कंपनियों का लाभ है। संभवत: यही कारण है कि ब्रिटानिया जैसी कंपनी भी डायबिटीक रोगियों के लिए बनाए गए अपने एक खास बिस्किट के विज्ञापन में लिखती है 'लैट्स बी फ्रेंड्ज विद डायबिटीज'। भला सोचिए, कौन बेवकूफ इस बीमारी से दोस्ती करना चाहेगा!

आपको रोगों के साथ जीवित बनाए रखने में ही दवा कंपनियों व अस्पतालों को लाभ होगा। वे सब मिल कर यह षड़यंत्र रच रहे हैं और आप सब कुछ जान कर भी अनजान बने बैठे हैं। यह मानव जाति का ही दुर्भाग्य है कि केवल मनुष्य ही रोगों से मरता है। क्या कभी आपने सुना कि बिल्ली हार्ट अटैक से मारी गई या किसी कुत्ते को उच्च रक्तचाप हो गया।

मर्क, ग्लैक्सो स्मिथक्लाइन, फाइजर सहित दुनिया की टॉप 10 दवा कंपनियों में आए दिन किसी न किसी मेडिकल घोटाले का सामने आना इस बात का प्रमाण है कि हम सब किसी न किसी गहरे जानलेवा खतरे से घिरते जा रहे हैं और बचाव का कोई उपाय सामने नहीं है।

''पारंपरिक डॉक्टर बीमारी के बारे में बात करते हैं
और प्राकृतिक डॉक्टर सेहत के बारे में।''

– महात्मा गांधी

अध्याय-2

बीमारियों का गणित

हम आपको 1975 के उस जमाने में ले चलते हैं जहां हम दुनिया की 10 टॉप कंपनियों में से दूसरे नंबर की बड़ी कंपनी मर्क की बात करेंगे। उस कंपनी के सीईओ का नाम था, हेनरी गॉडसन। उनका कहना था कि उनके मन में एक ही दुख है कि दुनिया में केवल रोगी ही उनकी कंपनी द्वारा बनाए गए उत्पाद का सेवन कर पाते हैं। वे उस दिन का सपना देख रहे थे जब वे दुनिया के स्वस्थ लोगों को भी अपने उत्पाद बेच सकेंगे। इसका अर्थ यह हुआ कि वे चाहते थे, सारी दुनिया बीमार पड़ जाए या न भी पड़े पर उनके उत्पाद अवश्य बिकें। जैसे कि च्यूइंगम। दुनिया में हर आदमी इसे चबाना पसंद करता है, चाहे वह छोटा हो या बड़ा। बीमार हो या स्वस्थ! इसी तरह दुनिया की सभी दवा कंपनियां यही चाहती हैं कि उनकी दवाएं दुनिया के सभी लोग बार-बार लें। यह प्रमाणित करने के लिए ही आप कुछ उदाहरण देखिए:

मान लेते हैं कि आपको नींद नहीं आ रही। भले ही इसका कारण कुछ भी हो परंतु आप नींद लाने की दवा खा लेते हैं। आप निरंतर इसी अभ्यास को जारी रखते हैं और कुछ समय बाद नौबत यह आ जाती है कि आपको नींद की दवा खाए बिना नींद आनी ही बंद हो जाती है। इसी प्रकार यदि आपको डिप्रेशन है तो कुछ दिन तक डिप्रेशन की दवा खाने का प्रभाव ऐसा होगा कि आप उन गोलियों को न खाने पर स्वयं को डिप्रेशन से घिरा पाएंगे। ऐसा लगेगा कि आपके जीवन में कोई कमी सी है। इसी प्रकार यदि आपको डायबिटीज की शिकायत नहीं है और फिर भी आप डायबिटिज नियंत्रित करने के लिए दवा लेते हैं तो कुछ ही दिनों में आप इस पर निर्भर हो जाएंगे।

ये सब कोरे किस्से नहीं हैं। ग्लैक्सो स्मिथक्लाइन नामक एक बड़ी कंपनी डॉक्टरों को निरतंर बीस वर्षों तक घूस देती रही ताकि उनकी दवाएं अधिक से अधिक स्वस्थ लोगों को दी जाएं। संभवत: वे जानते थे कि यदि उनकी दवाएं स्वस्थ लोगों को भी दी जाएंगीं तो कुछ ही दिनों में बहुत से लोग उन पर निर्भर

हो जाएंगे। उनकी दवाईयों के बिना लोगों का काम नहीं चलेगा। पूरे बीस साल बाद उनका यह दुष्कर्म पकड़ में आया। 20 जुलाई 2010 में लोगों को इस बात का पता चला और इस वजह से कंपनी को 16 हजार करोड़ रुपए से भी अधिक जुर्माना देना पड़ा। सवाल यह पैदा होता है कि क्या केवल जुर्माना भर देने से ही वे उस नैतिक अपराध से मुक्त हो गए जो उन्होंने मानवजाति के प्रति किया था?

केवल यही एक उदाहरण नहीं है जब दवा कंपनियों ने अपने लाभ कमाने के उद्देश्य को सबसे आगे रखते हुए बाकी दूसरे तथ्यों व कर्तव्यों को नकार दिया हो। उनका किसी की भी सेहत से कोई लेन-देन नहीं है। वे केवल रोगों को बढ़ावा देना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि अधिक से अधिक लोग बीमार पड़ें और आजीवन रोगों की चपेट में रहें, इसी में तो उनका लाभ है, कंपनियां चलेंगीं तो वे मालामाल होंगे।

मैं उदाहरण के तौर पर कुछ रोगों के विषय में बताता हूं:

डायबिटीज: 1997 तक यह माना जाता था कि फास्टिंग ब्लड शुगर यदि 140 एमजी/डीएल से ऊपर है तो आप डायबेटिक हो सकते हैं लेकिन 1997 में डब्ल्यूएचओ ने इसे रिवाइज करने के लिए एक कमेटी का गठन किया 'एक्सपर्ट कमेटी ऑन डायग्नोसिस एंड क्लासीफिकेशन ऑफ डायबिटीज'। इस कमेटी ने यह रिपोर्ट दी कि इसे 140 एमजी/डीएल से कुछ कम कर दिया जाए और उसके बाद इसे 126 एमजी/डीएल कर दिया गया। इसका मतलब यह हुआ कि रातों रात कुछ लोग जो कल तक डायबिटीज के मरीज नहीं थे, आज सुबह का अखबार पढ़ते ही डायबिटीज के मरीज बन गए। कुल मिलाकर दुनिया के 14 प्रतिशत लोग, जो डायबेटिक नहीं थे, वे डायबिटीज के घेरे में आ गए। गौरतलब है कि डब्ल्यूएचओ ने 17 लोगों की जो एक्सपर्ट कमेटी बनाई थी, उनमें से 16 लोग डायबिटीज की दवाइयां बनाने वाली कंपनियों के एजेंट, सलाहकार व वक्ता थे और उनमें से कई तो उनके वैज्ञानिक भी थे, जिन्हें बाकायदा कंपनी की ओर से पारिश्रमिक दिए जाते थे। उन कंपनियों के नाम निम्नलिखित हैं:-

एवेन्टीस फार्मास्यूटिकल्स, ब्रिस्टल-मायर्स सक्विब, एली लिली, ग्लैक्सो स्मिथक्लाइन, नोवारटिस, मर्क और फाइजर

ये तो बात रही डायबिटीज की। अब सोचा गया कि जिनका फास्टिंग शुगर 126 एमजी/डीएल से कम है, उन्हें कैसे इसके घेरे में लाया जाए? तब एक नया ही टर्म लांच किया गया। जिसे नाम दिया गया, प्री-डायबेटिक।

यानी कि डायबिटीज से पहला स्टेप और यह बोला गया कि डायबिटीज से पहले फास्टिंग ब्लड शुगर यदि 126 एमजी/डीएल से कम है तो उसे प्री-डायबिटीक कहेंगे यानी कि अब कुछ और लोग इस घेरे में आ गए यानी कि कल तक जो लोग डायबेटिक नहीं थे वे भी प्री-डायबिटीक टर्म के हिसाब से डायबिटिक हो गए।

हाइपरटेंशनः ऐसा ही कुछ हाइपरटेंशन के साथ भी हुआ। 1997 में ही डब्ल्यूएचओ ने एक पैनल बिठाया गया, जिसके मुखिया डॉ. अल्बर्टो जैनचेटी थे। इनकी मदद से 11 लोगों की कमेटी का गठन किया गया जिनका काम था कि 1997 तक सिस्टोलिक हाइपरटेंशन की सीमा को (160 एम एम एच जी) से बन कर 140 एमजी/डीएल कर दिया जाए और डायस्टोलिक हाइपरटेंशन, जो 100 एम एम एच जी था उसे 90 एम एम एच जी कर दिया जाए। यानी कि रातों रात 35 प्रतिशत लोग जो कल तक हाइपरटेंशन के शिकार नहीं थे, आज अचानक हाइपरटेंशन के मरीज बन गए। इस कार्य को अंजाम देने वाले उन 11 लोगों के बारे में पता किया गया तो मालूम चला कि उनमें से 9 लोग या तो हाइपरटेंशन की दवाई बनाने वाली कंपनी के वक्ता, सलाहकार या वैज्ञानिक हैं या किसी न किसी रूप में इससे जुड़े हैं। यह रिपोर्ट The Journal of American Association (द जर्नल ऑफ अमरीकन ऐसोसिएशन) द्वारा जारी की गई है।

अगले पृष्ठ पर दिये गये टेबल पर गौर करें:-

अब सवाल यह पैदा हुआ कि जिनका ब्लड प्रेशर 140एम एम एच जी से कम है, उन्हें घेरे में कैसे लें? उसी कमेटी ने एक नए टर्म को यह नाम दिया, 'प्री-हाइपरटेंशन'। यह तय किया गया कि जिनका सिस्टोलिक बीपी 120 एम एम एच जी से ऊपर है और डायस्टोलिक बीपी 80 एम एम एच जी से ऊपर है, उन्हें 'प्री-हाइपरटेंशन' कह देंगे। ऐसा होने के बाद 'सियेटल टाइम्स' अखबार के अनुसार, दुनिया की आधी से ज्यादा जनसंख्या या तो हाइपरटेंशन का शिकार हो गई या फिर 'प्री-हाइपरटेंशन' के घेरे में आ गई।

C - PAID CONSULTANT **S** - PAID SPEAKER **G** - GRANT RECEIPIENT

Company	Dr. George L. Bakris			Dr. Jackson T. Wright Jr.			Dr. Suzanne Oparil			Dr. Henry R. Black			Dr. Joseph L. Izzo Jr.			Dr. William C. Cushman			Dr. Barry J. Materson			Dr. Aram V. Chobanian			Dr. Daniel W. Jones		
	C	S	G	C	S	G	C	S	G	C	S	G	C	S	G	C	S	G	C	S	G	C	S	G	C	S	G
Merck	✓	✓	✓		✓	✓	✓		✓	✓		✓	✓	✓	✓			✓	✓						✓		
Novartis	✓	✓	✓		✓	✓	✓		✓		✓		✓	✓	✓	✓			✓						✓		
AstraZeneca	✓	✓	✓		✓	✓			✓	✓	✓		✓	✓	✓			✓					✓				
Bristol-Myers Squibb	✓	✓			✓	✓	✓		✓	✓	✓	✓				✓			✓				✓				
Pfizer					✓	✓	✓		✓	✓	✓	✓		✓		✓		✓	✓						✓		
GlaoSmithKline	✓	✓	✓		✓	✓			✓	✓					✓	✓		✓	✓								
Solvay	✓	✓	✓		✓	✓			✓					✓		✓			✓				✓				
Boehringer Ingelheim	✓	✓	✓						✓			✓		✓	✓			✓	✓								
Forest	✓	✓	✓		✓	✓			✓					✓		✓									✓		
Sankyo	✓	✓	✓						✓				✓	✓		✓											
Biovail	✓	✓				✓				✓					✓	✓											
Abbott	✓	✓	✓						✓	✓																	
Pharmacia										✓	✓	✓				✓			✓			✓					
Sanofi	✓	✓					✓		✓							✓											
Aventis					✓	✓			✓									✓									
Wyeth-Ayerst							✓		✓		✓												✓				
Alteon	✓	✓	✓																								
Bayer					✓	✓																					
Monarch									✓														✓				
Phoenix Pharmaceuticals					✓	✓																					

ठीक इसी तरह अब हम कोलेस्ट्रॉल की बात करते हैं। 1998 तक कोलेस्ट्रॉल 240 एचजी/डीएल से ऊपर चले जाने से हाई-कोलेस्ट्रॉल माना जाता था, लेकिन 1998 में डब्ल्यूएचओ ने 'टेक्सास कोरोनरी एथीरोस्क्लेरोसिस स्टडी' नामक एक पैनल बनाया। इस पैनल का काम था कि कोलेस्ट्रॉल लेवल के मापदंडों को नए सिरे से प्रस्तुत करना।

इसी वर्ष 1998 में कोलेस्ट्रॉल लेवल के मापदंड को 240 एमजी/डीएल कर दिया गया और यह घोषित कर दिया गया कि जिन लोगों का कोलेस्ट्रॉल लेवल 200 एमजी/डीएल से ऊपर है, वे हाई-कोलेस्ट्रॉल का शिकार माने जाएंगे। 56 प्रतिशत लोग जो अब तक स्वस्थ थे, मापदंड बदलते ही रातों रात हाई-कोलेस्ट्रॉल से पीड़ित हो गए।

ऑस्टियोपोरोसिसः इसी प्रकार से ऑस्टियोपोरोसिस का मामला है। 2003 में डब्ल्यूएचओ ने नया पैनल 'नेशनल ऑस्टियोपोरोसिस फाउंडेशन' बिठाया। इस पैनल को भी ऑस्टियोपोरोसिस के मापदंडों पर फिर से विचार-विमर्श करने को कहा गया। 2003 से पहले -2.5 से कम टी-स्कोर वाले को ऑस्टियोपोरोसिस का मरीज बताया जाता था, लेकिन 2003 में इस पैनल ने टी-स्कोर का लेवल -2.5 से घटाकर -2.0 कर दिया जिससे लगभग अन्य 85 प्रतिशत अन्य लोग भी ऑस्टियोपोरोसिस के घेरे में आ गए।

इस तरह अधिकतर रोगों की सीमा रेखा को कम कर दिया गया ताकि ज्यादा से ज्यादा लोग मरीज बन जाएं और बताने की आवश्यकता नहीं कि मरीजों से केवल अस्पतालों, फार्मास्यूटिकल कंपनियों और उनसे जुड़े लोगों को ही फायदा होता है।

अब हम जरा समझ लें कि बीमारियों की गाइडलाइंस बनती कैसे हैं?

1948 में यूएनओ ने डब्ल्यूएचओ (विश्व स्वास्थ्य संगठन) की स्थापना की। जिसका काम था दुनिया में स्वास्थ्य से जुड़ी संस्थाओं और नियमों को स्थापित करना और उन्हें एक बेहतर स्थिति तक पहुंचाना। दुनिया में जिन-जिन रोगों से अधिक लोग मर रहे हैं, डब्ल्यूएचओ उन पर शोध करती है। फिर कुछ चुनिंदा मेडिकल यूनिवर्सिटीज जैसे- ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, हावर्ड यूनिवर्सिटी, टोरंटो

यूनिवर्सिटी, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी आदि से डाटा और फीडबैक लेती है कि कौन सी बीमारी अधिक घातक सिद्ध हो रही है। इस फीडबैक के आधार पर एक पैनल बनाया जाता है। अकसर ये पैनल्स दवा कंपनियों द्वारा प्रायोजित किए जाते हैं यानी कि पैनलों के सदस्य इन दवा कंपनियों के ही कर्मचारी होते हैं। इसका मतलब यह है कि पैनल द्वारा तैयार की गई गाइडलाइंस चाहे वह हाइपरटेंशन की हों या कोलेस्ट्रॉल की या फिर ऑस्टियोपोरोसिस की, वे हमेशा दवा कंपनियों के हक में ही होती हैं।

एक बार गाइडलाइंस के बन जाने पर इन्हें डॉक्टरों तक पहुंचाने का काम यानी पोस्टमैन बनने का काम दवा कंपनियों के मेडिकल एजेंट करते हैं या इन्हें आए दिन आयोजित होने वाली मेडिकल कांफ्रेंस के माध्यम से विश्व भर में प्रचारित किया जाता है और फिर डॉक्टर इन्हें मरीजों तक यानी आप तक पहुंचाते हैं।

डॉक्टरों और डब्ल्यूएचओ के बीच होती हैं दवा कंपनियां और दवा कंपनियों का एक ही मकसद होता है और वह है- लाभ कमाना। अगर आप चाहते हैं कि आपको असलियत पता चले तो डॉक्टरों, दवा कंपनियों और नई गाइडलाइंस को बीच से हटा कर विश्वसनीय यूनिवर्सिटीज से सीधा जुड़ने की कोशिश करें।

अब जानने की कोशिश करते हैं कि बीमारियों का खेल होता कैसे है:-

किसी बीमारी को तैयार करके कैसे बढ़ावा दिया जाता है!

दवा कंपनियां का डॉक्टरों से संबंधः-

- दवा कंपनियां सलाहकार और वक्ताओं के तौर पर डॉक्टरों को बुलाती है।
- डॉक्टरों के शोध को प्रायोजित व प्रकाशित करने में दवा कंपनियां मदद करती हैं।

डॉक्टरों द्वारा दवा कंपनियों को सलाह :-

- नई दवाओं के प्रयोग में उनकी मदद करते हैं।
- मार्केटिंग के मामले में उन्हें सलाह देते हैं।
- अन्य विशेषज्ञ भी उन्हें दवाओं की लांचिंग में सहायता देते हैं और एफडीए से उन नई दवाओं की मंजूरी लेने के लिए भी कंपनियों की मदद करते हैं।

- कुछ डॉक्टरों का पैसा भी इन कंपनियों में लगा होता है इसलिए वे भी समय-समय पर इन्हें सलाह और मदद देते रहते हैं।

बीमारी को परिभाषित करना:-

- दवा कंपनियां एक मीटिंग प्रायोजित करती हैं जहां विशेषज्ञ बीमारियों की नई परिभाषा देने के लिए तैयार होते हैं।
- पहले से स्थापित बीमारियों को भी फिर से परिभाषित किया जाता है और विशेषज्ञ इनके उपचार के लिए गाइडलाइंस लिखते हैं। जिनके माध्यम से अन्य चिकित्सकों को बताया जाता है कि ज्यादा से ज्यादा दवाओं का प्रयोग कैसे किया जाना चाहिए?

बीमारी का प्रचार करना:-

- गाइडलाइंस लिखने वालों सहित कंपनी विशेषज्ञ भी चिकित्सकों को बीमारी की नई परिभाषाओं से जुड़ी जानकारियों से अवगत कराते हैं।

आशा करता हूं कि अब आपको बीमारियों का यह गणित समझ में आ गया होगा और आप जान गए होंगे कि कैसे आपको दो दूनी आठ के इस प्रपंच में हमेशा के लिए फंसा दिया जाता है।

''बढ़ई लकड़ी चाहता है
और डॉक्टर बीमारी।''

– ऋग्वेद

अध्याय-3

रोगों का मायाजाल

वर्तमान जीवनशैली में मनुष्य पहले से ही इतने रोगों से घिरा है कि उसे और रोगों की कोई आवश्यकता ही नहीं है किंतु हमारे समाज के अनेक शक्तिशाली उद्योग ऐसे हैं जो मनुष्य को नए रोगों का उपहार देने में जुटे हैं। मनुष्य को निरंतर यह भरोसा दिलाया जाता है कि उसे कोई रोग है जिसका इलाज होना परमावश्यक है।

इस प्रयास को 'डिज़ीज मॉन्जरिंग' का नाम दिया गया है। डिज़ीज मॉन्जरिंग एक स्वस्थ व्यक्ति के मन में यह भय पैदा कर देती है कि वह किसी न किसी रोग से ग्रस्त है। जो व्यक्ति छोटी-मोटी बीमारियों जैसे- खांसी, जुकाम वगैरह से पीड़ित है, उसे यह एहसास कराया जाता है मानो उसे कोई भयंकर रोग लग गया हो जिसका इलाज होना शत-प्रतिशत आवश्यक है। इस रणनीति को रे मॉयनिहान, इयोना हेथ और डेविड हेनरी ने ब्रिटिश मेडिकल जर्नल में 'कॉरपोरेट कंस्ट्रक्शन ऑफ डिज़ीज' का नाम दिया है। इनके अनुसार रोगों के बारे में झूठी व भ्रामक धारणाएं प्रचारित की जाती हैं ताकि स्वस्थ लोगों को बीमार बताकर बहुत सा पैसा बनाया जा सके । यही कारण है कि दवा कंपनियां नई-नई बीमारियां और उनकी दवाएं बना कर अपने ग्राहकों की संख्या बढ़ाने में सक्रिय रूप से काम कर रही हैं।

डिज़ीज मॉन्जरिंग की शुरुआत 1879 में लिस्ट्रीन के आविष्कार से हुई जो मूल रूप से एक शल्य एंटीसेप्टिक है। इसका नाम प्रसिद्ध अंग्रेजी सर्जन जोजेफ लारेंस लिस्टर (जिन्होंने पहली एंटीसेप्टिक शल्य प्रक्रिया का प्रदर्शन किया था) के नाम पर रखा गया। जल्द ही लिस्ट्रीन के आविष्कारक डॉ. जोजेफ लारेंस लिस्टर और जॉर्डन वी लैंबर्ट इसे एक फर्श साफ करने वाले क्लीनर और प्रमेह (गोनोरिहा) के इलाज के रूप में बेच रहे थे। 1895 में वे इसे दांतों और सांस की बदबू के इलाज के रूप में दंत-चिकित्सकों को बेच रहे थे। 1914 तक अमेरिका में लिस्ट्रीन एक ओवर द काउंटर माउथवॉश के रूप में प्रचलित हो चुकी थी। 1920 के दशक तक लंबार्ट फार्मासेल कंपनी, लिस्ट्रीन निर्माता

को विश्वास हो गया कि उन्हें एक 'इलाज' मिल गया है। अब जरूरत थी तो केवल 'बीमारी' की और एक नई बीमारी ईजाद की गई जिसका नाम 'हैलीटोसिस' रखा गया। 'हैलीटोसिस', मुंह की दुर्गंध के लिए एक अस्पष्ट मेडिकल टर्म था, जिसके बारे में बहुत कम लोगों को जानकारी थी। विज्ञापनों द्वारा लिस्ट्रीन को हैलीटोसिस की एकमात्र चिकित्सा के रूप में दर्शाया गया। विज्ञापनदाताओं ने हैलीटोसिस को एक ऐसी बीमारी बताया जो किसी भी व्यक्ति के करियर, रोमांस और वैवाहिक जीवन में असफलता का कारण बन सकता है। फिर क्या था, जल्द ही अमेरिका के 90 प्रतिशत लोग हैलीटोसिस नामक बीमारी से ग्रसित हो चुके थे।

चिकित्सा उद्योग जानता है कि उसे अधिक से अधिक लाभ पाने के लिए आम व रोजमर्रा के अनुभवों को चिकित्सकीय रूप देना होगा। उसे हर एक भावना, व्यवहार, आदत और मूड के बदलाव को एक बीमारी या विकृति के रूप में दर्शाना होगा, जिसका रासायनिक उपचार जरूरी होगा। उनकी इस योजना के अनुसार एक सामान्य परिस्थिति को इस तरह से बढ़ा-चढ़ाकर पेश करने की जरूरत थी जिससे वह एक भयंकर बीमारी लगने लगे। साथ ही उन्हें यह एहसास करा देना था कि यदि समय रहते इसका इलाज न किया गया तो वह पीड़ित की व्यक्तिगत प्रसन्नताओं और सफलताओं की संभावनाओं तक को बर्बाद कर सकता है। ये वास्तविक जीवन परंतु अस्पष्ट परिस्थितियों को इस तरह से दर्शाते हैं कि अधिकांश जनसंख्या मानने लगे कि वे इस बीमारी से ग्रस्त हैं। यह विचित्र परंतु सत्य है कि लोगों के लक्षणों को जब किसी विकार या बीमारी के नाम से जोड़ा जाता है तो उन्हें एक आराम या सुकून का एहसास होता है। उन्हें मानसिक तौर पर संभालना आसान हो जाता है । उन्हें लगता है 'मुझे फलां-फलां बीमारी है और भगवान का शुक्र है कि फलां-फलां दवाई सिर्फ मेरे लिए ही बनी है।'

अपने किसी प्रियजन की मृत्यु के बाद पुरानी दिनचर्या में केवल दो सप्ताह में वापस आना कदापि संभव नहीं है।

दुख या शोक एक व्यक्तिगत अनुभव है तथा अधिकांश लोगों में शोक की अवधि दो से छह माह या कभी-कभी उससे भी ज्यादा की होती है। हमारे

अत्यंत प्रियजन की मौत के पश्चात शोक मनाने की यह एक सामान्य अवधि तथा प्रक्रिया है।

लेकिन अमेरिकन साइकायट्रिक एसोसिएशन (एपीए) इस प्रकार के शोक और गम को एक मानसिक रोग का जामा पहनाने वाली है जिससे कि चिकित्सकों को बढ़ावा मिले कि वे दो सप्ताह से अधिक समय के शोक को एक मानसिक रोग का नाम दे सकें।

'शोक' को एक मानसिक रोग का सर्टिफिकेट देने से यह एक दवा द्वारा ही ठीक किया जाने वाला तथा बिल बनाने वाला रोग बन जाएगा। फिर यह इंश्योरेंस कंपनी द्वारा क्लेम किया जा सकेगा तथा हमारे हेल्थ रिकॉर्ड में एक कलंक के रूप में झलकता रहेगा।

अमेरिकन साइकायट्रिक (एपीए) के प्रस्तावित वर्गीकरण के अनुसार दो सप्ताह से अधिक मनाए जाने वाले शोक को 'एक मानसिक रोग' के रूप में डायग्नोस्टिक और स्टैटिस्टिकल मैन्यूअल (डीएसएम-5) के अगले संस्करण में शामिल कर लिया जाएगा।

डायग्नोस्टिक मैन्यूअल के संस्करण-4 (डीएसएम-4) के अनुसार दुखी होना, नींद न आना और रोना, शोक के हल्के-फुल्के लक्षणों में शामिल हैं। डीएसएम-4 की गाइडलाइंस में एक सामान्य शोक तथा प्रमुख अवसाद के लक्षणों के बीच स्पष्ट अंतर बताए गए हैं।

रिचर्ड फ्राइडमैन (एमडी), द न्यू इंग्लैंड जर्नल ऑफ मेडीसिन के लिए लिखते हुए कहते हैं कि डीएसएम-5 के नए मापदंड उन स्वस्थ लोगों (जो जरा सा परेशान या दुखी हैं) को एक उत्तम उम्मीदवार बना देते हैं जिन्हें एंटीडीप्रेसेंट तथा अन्य मानसिक रोगों को दूर करने वाली दवाइयां लिखी जा सकती हैं। रिचर्ड के अनुसार यह डीएसएम-5 दवा कंपनियों के लिए एक वरदान साबित होगा क्योंकि यह अनावश्यक एंटीडीप्रेसेंट्स और एंटीसाइकोटिक्स के प्रयोग को बढ़ावा देगा जो कि प्रमुख रूप से अवसाद और उत्कंठा के लिए प्रयोग में लाई जाती हैं।

रिचर्ड इस बात की ओर भी ध्यान दिलाना चाहते हैं कि अमेरिका में प्रत्येक वर्ष 2.5 मिलियन लोगों की मौत होती है और इनकी वजह से शोक में डूब जाने वाले लोगों की संख्या इससे भी कहीं अधिक है। ये वही शोकग्रस्त लोग हैं जिनका इलाज करके दवा कंपनियां लाभ उठाना चाहती हैं। इसके लिए चिकित्सकों को अमेरिकन साइकायट्रिक एसोसिएशन (एपीए) और उनके द्वारा बनाए गए नए मापदंडों को धन्यवाद देना होगा।

रोग- जिन्हें तिल का ताड़ बना दिया जाता है:

एपीए को समुचित रूप से अमेरिकन साइकोफार्माकोलोजिकल एसोसिएशन कहा जाना चाहिए क्योंकि वे सभी मानसिक बीमारियों का इलाज केवल और केवल दवाइयों को ही मानते हैं तथा दवाओं के प्रयोग को प्रोत्साहित करते हैं। एक दुखद खबर यह भी है कि एपीए नई-नई बीमारियों का आविष्कार करने में दवा उद्योग के साथ क्रमबद्धता से काम कर रही है जो कि समय-समय पर मेडीकल साहित्य में शामिल की जाती हैं।

उदाहरणस्वरूप

- अगर आप बहुत ज्यादा शॉपिंग करते हैं तो आपको 'कंपल्सिव शॉपिंग डिस्ऑर्डर' है।
- अगर आपको गुणा करते हुए परेशानी होती है तो आपको 'डिस्कैलकुलिया' हो सकता है।
- अगर आप वेब सर्फिंग में ज्यादा समय व्यतीत करते हैं तो आप 'इंटरनेट एडिक्शन डिस्ऑर्डर' से ग्रस्त हैं।
- जिम में ज्यादा वर्कआउट का मतलब है कि आप बायगोरेक्सिया या 'मसल डिस्मोर्फिया' से पीड़ित हैं।
- अगर आपको नंबर 13 से डर लगता है तो संभवत: आपको ट्रिस्काइडेका फोबिया है।

ये नई-नई बीमारियां अगर ज्यादा से ज्यादा लोगों में पाई जाने लगीं तो डीएसएम के अगले अंकों में शामिल हो जाएंगी। किसी भी व्यवहार या विकार पर अगर दवाईयों का असर पड़ता है तो वह निश्चित रूप से एक व्याधि या रोग मान ली

जाएगी और डीएसएम में स्वत: ही शामिल कर ली जाएगी। डीएसएम में शामिल 297 मानसिक रोगों में से कोई एक भी रोग ऐसा नहीं है, जो कि वस्तुनिष्ठ तौर पर मापा जा सके। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि ये रोग पूरी तरह से विषयपूरक हैं।

एक साइकियाट्रिक पैनल में बैठकर मनमाने ढंग से डीएसएम में दिए गए मानसिक विकारों के लक्षणों को बीमारियों में परिवर्तित कर दिया जाता है। उनका कोई मानक और मापदंड नहीं होता। मतलब साफ है। ये लोग दवाइयों के हिसाब से नई-नई बीमारियों का आविष्कार कर रहे हैं, न कि बीमारियों के लिए दवाइयों का।

आज किसी भी मनोवैज्ञानिक से मिलने का मतलब है कि आप एक मनोरोगी हैं और आपका एक असामान्य व्यवहार भी एक विकृति या रोग के रूप में देखा जाएगा। इस बात की शत प्रतिशत संभावनाएं हैं कि आप किसी मनोवैज्ञानिक के क्लीनिक से एक मनोरोगी का पदक लेकर ही बाहर आएंगे और आपके हाथ में आवश्यक रूप से बहुत लंबी दवाइयों का चिट्ठा होगा। आपके व्यवहार को किस प्रकार सामान्य किया जाए और किस प्रकार आप अपनी जीवनशैली में कुछ बदलाव लाकर खुद को सामान्य कर सकते हैं। यह सिखाने की बजाए कोशिश यही रहती है कि आपको एक आसान सा तरीका बता दिया जाए और वह है, दवाइयों का सेवन। यह तरीका आसान ही नहीं अपितु उनके लिए लाभदायक और आकर्षक भी है क्योंकि इसके साथ ही मनोवैज्ञानिकों के भविष्य की अनेक लाभदायक संभावनाएं जुड़ी हैं।

मनुष्य के अलग-अलग प्रकार के आचार और व्यवहारों को एक मानसिक बीमारी का रूप देने का यह फंडा दवा कंपनियों के लिए कामधेनु साबित हुआ है। मार्केटिंग प्रोफेशनल विंस पैरी ने इसे एक कला का नाम दिया है, 'द आर्ट ऑफ ब्रांडिंग ए कंडीशन!'

उनका कहना है कि हर दशक में डीएसएम के बढ़ते आकार से यह यकीन और भी प्रबल होता जाता है कि संसार पहले से भी ज्यादा अस्थिर हो गया है। शायद यही वजह है कि हमें यह जानकर बिल्कुल भी आश्चर्य नहीं होता कि इन नई-नई बीमारियों के आविष्कार व उनके प्रचार में दवा कंपनियों का सीधा पैसा

लगा हुआ है, चाहे वह कोई शोध हो या फिर उसका प्रचार।

इससे भी ज्यादा निंदनीय बात क्या हो सकती है, जब अमेरिकी साइकायट्रिक एसोसिएशन का एक भूतपूर्व मुखिया यह मानता है कि एपीए द्वारा डीएसएम में की गई कुछ असावधानियों और गलतियों का नतीजा बहुत ही बुरा हो सकता है। ऐसी कई असावधानियों की वजह से सैकड़ों बच्चों और वयस्कों पर एक 'मानसिक रोगी' होने का गलत लेबल लग चुका है और मानसिक रोगों का एक ऐसा संक्रमण फैल गया है, जिनका वास्तव में कोई अस्तित्व ही नहीं था।

मासूम बच्चों पर निशाना- बड़ी दवा कंपनियों का निंदनीय कृत्य

'रोगों का निर्माण' सिर्फ वयस्कों पर ही असर नहीं डालता बल्कि यह आपके बच्चों पर भी निशाना साधता है। एक नई पुस्तक- बोर्न विद ए जंक फूड डेफिशिएंसी फलैक्स, क्वैक्स एंड हैक्स पिंप द पब्लिक हेल्थ- बड़ी-बड़ी दवा कंपनियों की कलई खोलते हुए उनके राज बताती है कि किस तरह इनकी साजिश के तहत मनुष्य की सबसे कमजोर कड़ी, उनके 'मासूम बच्चे' जाल में फंस जाते हैं। अल्ट्रानैट के अनुसार 'बाल मनोचिकित्सा', जो कभी एक साधारण सी विशेषज्ञता मानी जाती थी, आज फार्मा इंडस्ट्री के लिए एक अत्यंत सक्रिय तथा लाभदायक बाजार बन चुकी है।

सीजोफ्रीनिया जैसी बीमारी से लेकर चिड़चिड़ेपन तथा तुनकमिजाजी तक, दवा कंपनियों के पास हर एक बच्चे के लिए कोई न कोई गोली या दवाई है। यह सब एक अच्छी मार्केटिंग का ही नतीजा है कि आज का एक छोटा बच्चा तक मनी बम में परिवर्तित हो गया है लेकिन यह हुआ कैसे? मेडिकल रीप्रेजेंटेटिव जेन ऑलसेन कहते हैं कि यह बहुत ही आसान है-

'बच्चों को स्कूलों में छोटी मोटी तकलीफों के लिए मेडिकल रूम से दवाएं लेने के लिए दबाव डाला जाता है। घरों में दवाएं लेने के लिए उन पर माता-पिता व अभिभावकों का भी दबाव होता है। वहीं अस्पताल जाने पर डॉक्टर भी उन पर दवाएं लेने को लेकर मानसिक दबाव डालते हैं। इस तरह से बच्चे एक आदर्श मरीज बन जाते हैं अर्थात् वे दवा कंपनियों के जीवनपर्यंत ग्राहक बन जाते हैं।

जेन के अनुसार, जो बच्चे शुरू में एडीएचडी, बायपोलर या किसी अन्य मानसिक रोगों की दवाइयां लेते हैं और बाद में ठीक हो जाते हैं। वे बहुत ही सुचारू रूप से जीवन निर्वाह करते हैं, लेकिन इन बच्चों में भी जीवन भर इन मानसिक रोगों को लेकर एक बहुत बड़ा भय समाया रहता है, जो इनके मानसिक, सामाजिक और भावनात्मक विकास पर भी हावी हो जाता है।

ऐसा इसलिए होता है क्योंकि बचपन में ली गई दवाइयों का दुष्प्रभाव उनकी जिंदगी के हर पहलू पर असर करता है।

एक नए शोध अध्ययन के अनुसार बच्चों को दी जा रहीं एलर्जी और अस्थमा की दवाइयों से मानसिक विकृति होने का खतरा बढ़ जाता है। जिन बच्चों के मानसिक रोगी होने का पता चलता है, वे न केवल हमेशा के लिए रोगी अपितु महंगे रोगी भी हो जाते हैं। उनकी दवाइयों का मासिक व्यय दस हजार अथवा उससे भी अधिक हो सकता है। फार्मा इंडस्ट्री को नि:संदेह ही सरकार तथा अन्य लोगों की मदद मिल रही है। सरकार द्वारा चलाए गए नए-नए अभियान जैसे- पोलियो कैंपेन, शिशुओं की वैक्सीनेशन, अलग-अलग जरूरी क्लीनिकल टेस्ट आदि इन फार्मा कंपनीज का काम बहुत ही आसान कर देते हैं।

यह एक शर्मनाक बात है कि ज्यादातर मनोवैज्ञानिक सलाह लिखने में इतने व्यस्त हैं कि उन्हें अपनी जानकारी अपडेट करने की भी जरूरत महसूस नहीं होती।

हाल ही में बीएमसी सायकाइट्री में प्रकाशित एक रिसर्च में पाया गया कि ज्यादातर गंभीर मानसिक रोगों से ग्रस्त किशोर व किशोरियों में विटामिन डी की कमी पाई गई है। यह कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है क्योंकि विटामिन डी मानसिक वृद्धि के लिए अत्यंत आवश्यक है। इस रिसर्च के अनुसार विटामिन डी की कमी किशोर व किशोरियों के मानसिक रोगी होने की संभावनाओं को चार गुना बढ़ा देती है। इस रिसर्च के अनुसार, मेंटल हेल्थ क्लीनिक में रहने वाले बच्चों में विटामिन डी की मात्रा बहुत ही खतरनाक ढंग से कम पाई गई। किशोरियों में इसकी मात्रा केवल 20 एनजी/एमएल तथा किशोरों में 10 एनजी/एमएल पाई गई। इसकी सामान्य रेंज 30 से 74 एनजी/एमएल है। कोई

भी बच्चा, जो असामान्य मानसिक और व्यावहारिक लक्षण दिखा रहा है, उसे अपना विटामिन-डी लेवल चेक करवाना चाहिए। यह एक स्टैंडर्ड टेस्ट यानी मानक जांच होनी चाहिए परंतु डॉक्टरों और मनोवैज्ञानिकों द्वारा इसे नजरंदाज किया जा रहा है। कई शोध अध्ययनों ने यह साबित किया है कि विटामिन डी की कमी को दूर करने के बाद कई मानसिक रोगियों में सुधार आ गया।

शोक- कब चिंताजनक है?

यदि हम फिर से शोकावस्था की बात करें तो कह सकते हैं कि शोक की तीव्रता धीरे-धीरे समय के साथ घटते हुए समाप्त हो जाती है किंतु 10 से 20 प्रतिशत लोगों को सामान्य होने में कुछ माह या वर्ष भी लग जाते हैं। एक शोध के मुताबिक लंबे समय तक चलने वाला शोक एक लत की तरह काम करता है और हमारा मस्तिष्क जाने-अनजाने उसी आनंद में मग्न रहने लगता है।

इसका मतलब यह है कि यदि आप 'शोक' से बाहर निकलना चाहते हैं तो नीचे दिए गए सुझावों का पालन करें। यह बहुत ही लाभदायक सिद्ध होगा।

पहले तो आप यह जान लें कि 'शोक' रूपी अंधकार से बाहर आना इतना सहज नहीं होता किंतु प्रत्येक मनुष्य इस काली गुफा के अंधकार से बाहर निकलने में समर्थ है। छह महीनों के भीतर ही आपको इस काली गुफा के दूसरे छोर पर रोशनी की किरणें दिखाई देने लगेंगी और आप अपने सकारात्मक मनोबल द्वारा शोकवस्था से पार पा सकते हैं। शोकावस्था के दौरान व्यायाम बहुत मददगार साबित होता है। ध्यान और योग भी मनुष्य को तनावरहित रखते हैं। हमेशा याद रखें कि आपका शरीर व दिमाग आपके खानपान पर निर्भर करता है। यदि आपका आहार अच्छा है तो आपको कोई भी मानसिक रोग नहीं घेर सकता।

आहार के अतिरिक्त अच्छी व भरपूर नींद लेना भी आवश्यक है । अगर आप दुनिया का सबसे अच्छा आहार ले रहे हैं और नियमित व्यायाम कर रहे हैं, लेकिन ठीक से सो नहीं रहे हैं तो यह आपके मानसिक असंतुलन का कारण बन सकता है।

सार यह है कि आप अच्छे आहार व्यायाम, नींद और सकारात्मक सोच से किसी भी 'शोकावस्था' से आसानी से बाहर आ सकते हैं जो कि आगे चलकर मानसिक असंतुलन का कारण बन सकती है,

डीज़ीज मॉन्जरिंग के कुछ उदाहरण:-

	लक्षण	रोग
1.	बाल झड़ना या गंजापन	हेयर फॉलिकल डिस्ऑर्डर्स
2.	पेट में दर्द या बोवेल मूवमेंट्स में बदलाव	इरिटेबल बोवेल सिंड्रोम
3.	संकोच या शर्मीलापन	सोशल फोबिया
4.	हड्डियां कमजोर होना (यह एक रिस्क फैक्टर है परंतु इसे एक बीमारी का रूप दे दिया गया)	ऑस्टियोपोरोसिस
5.	डिफिकल्टी इन गैटिंग एंड मेनटेनिंग इरेक्शन	इरेक्टाइल डिस्फंक्शन
6.	जिन महिलाओं को सेक्स में ज्यादा रुचि नहीं है	फीमेल सेक्सुअल डिस्फंक्शन
7.	बढ़ते बच्चों के मूड में बदलाव	बायपोलर इन चिल्ड्रन
8.	महिलाओं में मासिकधर्म से पहले आने वाला तनाव	प्रीमेन्सट्रल डिस्फोरिक डिस्ऑर्डर
9.	अनावश्यक रूप से टांगें हिलाना	रेस्टलेस लेग सिंड्रोम
10.	60 वर्ष की आयु के बाद मानसिक असंतुलन की संभावना	साइकोसिस रिस्क सिंड्रोम
11.	भूलने की आदत	माइल्ड कॉग्निटिव इम्पेयरमेंट
12.	ब्लड ग्लूकोज का स्तर सामान्य स्तर से अधिक होना	प्री-डायबिटीज
13.	पैर के अंगूठे के नाखून में संक्रमण	टोनेल फंगस
14.	कभी-कभी सीने में जलन	गैस्ट्रो-एसोफेजल रीफलेक्स डिजीज (जीईआरडी)
15.	वयस्कों का काम में मन न लगना, भूलना व एकाग्रता की कमी	एडल्ट अटेंशन डेफीसिट हाइपरएक्टिविटी डिस्ऑर्डर
16.	शरीर में अकारण ही थकान और दर्द	फाइब्रोमाएलजिया
17.	सांस में बदबू	हैलीटोसिस

लक्षण	रोग
18. 40-45 वर्ष के बाद मासिकधर्म का बंद होना	मीनोपॉज
19. गाड़ी तेज चलाने की प्रवृत्ति	रोड-रेज
20. बार-बार टॉयलेट जाने की इच्छा	ओवर-एक्टिव ब्लैडर
21. ज्यादा व्यायाम करने के बाद एक एथलीट के चेहरे पर चर्बी की कमी	रनर्स फेस
22. अधिक खरीदारी करने की प्रवृत्ति	कंपल्सिव शॉपिंग डिस्ऑर्डर
23. पुरुषों में टेस्टोस्टेरॉन की कम मात्रा	लो टी
24. ज्यादा इंटरनेट सर्फिंग करना	इंटरनेट एडिक्शन डिस्ऑर्डर
25. गणित हल करते हुए मुश्किल होना	डिस्कैलकुलिया
26. अत्यधिक सफाई पसंद होना, किसी भी काम या बात की गहराई में जाना या परफेक्शनिज्म	ऑब्सेसिव-कम्पल्सिव पर्सनैलिटी डिस्ऑर्डर
27. जिम में ज्यादा वक्त बिताना	मसल डिस्मोर्फिया
28. 13 नंबर का डर	ट्रिसकाइडिकाफोबिया

''हर दवाई मरीज की स्थिति को
और गंभीर बनाती है।''

– *रॉबर्ट हैंडरसन*

अध्याय-4

अनावश्यक चिकित्सा व जांच

जरा सोचिए, अगर ऐसा हो कि आपकी कार रास्ते में चलते-चलते खराब हो जाए और फिर कुछ समय बाद वह खुद-ब-खुद ठीक भी हो जाए या कभी आपकी कार का टायर पंक्चर हो जाए और कार खुद ही अपना पंक्चर ठीक कर ले! इन मशीनों के साथ ऐसा होना एक ख्वाब ही हो सकता है लेकिन इंसान रूपी मशीन के साथ ऐसा ही होता है। जब आपके शरीर के किसी भी अंग में चोट लगती है या अंग का कोई हिस्सा कट जाता है तो वहां से खून बहना शुरू हो जाता है। फिर खून जमा होकर जख्म को भर देता है और कुछ ही दिनों में आप पूरी तरह से ठीक हो जाते हैं। उसी प्रकार आपके शरीर में यदि कोई बीमारी का वायरस प्रवेश करता है तो रोग प्रतिरोधक क्षमता आपके शरीर का तापमान बढ़ा देती है जिससे वह हानिकारक वायरस अपनी सक्रियता खो देता है और कुछ समय बाद आपका बुखार उतर जाता है। मशीन और मानव शरीर में यही एक बड़ा अंतर है।

हमारा शरीर किसी कारखाने में निर्मित उत्पाद नहीं है। कारखाने से निकले उत्पाद तो पूरी तरह से तय किए गए मानक के अनुसार हो सकते हैं किंतु मनुष्य के साथ ऐसा नहीं होता। इस संसार का प्रत्येक व्यक्ति अपने-आप में खास है। उत्पाद को बाजार में उतारने से पूर्व उसकी गुणवत्ता यानी क्वालिटी की जांच की जाती है ताकि उत्पाद में भूल या खराबी की संभावना पर पहले ही रोक लगा दी जाए। यदि किसी उत्पाद में कोई कमी है तो वह लाख चाहने पर भी स्वयं को ठीक नहीं कर सकता। किंतु मानव शरीर में स्वयं को ठीक करने की अद्‌भुत क्षमता है। आपके शरीर में हर पल अनगिनत कोशिकाएं टूटती रहती हैं और आपका शरीर खुद-ब-खुद दोबारा उन्हें बना लेता है या मरम्मत कर लेता है किंतु जब आप हॉस्पिटल जाते हैं तो आपके शरीर की जांच कुछ इस प्रकार की जाती है मानो आप कोई इंसान नहीं एक मशीन हों।

इस बात को समझने के लिए जरा इन उदाहरणों पर गौर करें:

1. 1991 में इन्वेस्टिगेटिव रेडियोलॉजी नामक जर्नल में प्रकाशित एक रिपोर्ट के

अनुसार एक प्रयोग में कुछ ऐसे लोगों को इकट्ठा किया गया जिनमें गॉलस्टोंस से जुड़े कोई भी लक्षण नहीं थे। फिर उन सब पर यूं ही गॉलब्लैडर रोग की संभावना को पता लगाने के लिए अल्ट्रासाउंड से स्कैन किया गया तो पाया गया कि 10 प्रतिशत लोगों में गॉलस्टोन मौजूद था।

2. न्यू इंग्लैंड जर्नल ऑफ मेडीसिन, 1994 के रिपोर्ट के अनुसार ऐसे लोगों को इकट्ठा किया गया जिनको न तो बैक पेन था और न ही बैक पेन का कोई इतिहास, लेकिन एमआरआई से बैक स्कैन किए जाने के बाद यह पता चला कि 50 प्रतिशत से भी ज्यादा लोगों में बल्जिंग लंबर डिस्क की समस्या है।

3. न्यू इंग्लैंड जर्नल ऑफ मेडीसिन, 2008 के अनुसार एक प्रयोग में कुछ ऐसे लोगों को इकट्ठा किया गया, जिनको न तो घुटनों का दर्द था और न ही घुटने के दर्द से जुड़ा कोई इतिहास। इसके बावजूद एमआरआई द्वारा घुटने की स्कैनिंग की गई तो लगभग 40 प्रतिशत लोगों के घुटनों में मैनिसकस डैमेज पाया गया।

निष्कर्ष यह है कि हमारे शरीर में हर समय कई प्रकार के जोड़-तोड़ चलते रहते हैं। यह शरीर का एक रहस्य है। परंतु हम अपने शरीर के सेल्फ हीलिंग मैकनिज्म (शरीर द्वारा स्वयं की चिकित्सा करने का तंत्र) पर विश्वास न करके घबराकर अपने आपको डॉक्टरों या सर्जनों के सुपुर्द कर देते हैं। इसके बाद एमआरआई या अल्ट्रासाउंड की रिपोर्ट में जो कमियां नजर आती हैं, डॉक्टर उसे ठीक करने में जुट जाते हैं। जिससे आपके शरीर का सूक्ष्म संतुलन बिगड़ जाता है और एक से दूसरी और दूसरी से तीसरी बीमारी का ऐसा सिलसिला शुरू होता है जो कभी थमने का नाम ही नहीं लेता।

टाइम मैग्जीन की एक रिपोर्ट के मुताबिक, मृत्यु के बाद शरीर के एटोप्सी टेस्ट से पता चला कि लगभग 98 प्रतिशत लोगों के शरीर में कैंसरयुक्त कोशिकाएं निष्क्रिय रूप में हमेशा विद्यमान रहती हैं। आपको उनके शरीर में होने या न होने से कोई नुकसान नहीं होता। लेकिन कुछ कारणों से ये निष्क्रिय कैंसरयुक्त कोशिकाएं सक्रिय हो जाती हैं। वे कारण निम्नलिखित हैं:

1. लगातार कुछ महीनों तक ऐसी दवाओं का सेवन करना जो कि अक्सर

डायबिटीज, कोलेस्ट्रॉल, या हाई ब्लड प्रेशर के मरीज करते हैं या बर्थ कंट्रोल पिल्स का लंबे समय तक सेवन करना भी कैंसरयुक्त सेल्स को सक्रिय कर सकता है।

2. किसी भी प्रकार का डायग्नोस्टिक एक्सरे जैसे- मेमोग्राफी, अल्ट्रासाउंड आदि कैंसर को बुलावा देते हैं।

फिनलैंड के पैथोलॉजिस्ट की रिपोर्टस के रिकॉर्ड के अनुसार गले की एटोप्सी में पाया गया कि लगभग हर इंसान के थायरॉयड में कैंसर सेल्स बहुत कम मात्रा में होते ही हैं। इसलिए निष्क्रिय कैंसरस सेल्स का थायरॉयड ग्लैंड में होना सामान्य माना जाना चाहिए परंतु आज अस्पताल यह प्रचार कर रहे हैं कि हर साल आपको अपना शरीर स्कैन करवा कर यह देखना चाहिए कि शरीर में किसी कैंसरयुक्त कोशिका के होने की संभावना तो नहीं है।

गाइड टू क्लीनिकल प्रीवेंटिव सर्विसेज, 1996 में यह सुझाव दिया गया कि हर साल थायरॉयड कैंसर की स्क्रीनिंग आवश्यक है। अगले पृष्ठ में दिए गए ग्राफ आप यह अनुमान लगा पाएंगे कि 1996 के बाद थायरॉयड कैंसर के मामलों में अचानक वृद्धि पाई गई । खास बात यह है कि अक्सर ऐसे मामलों में डॉक्टर थायरॉयड ग्लैंड्स को सर्जरी के माध्यम से निकाल देने की कोशिश करते हैं जिसकी कतई आवश्यकता नहीं होती।

थायरॉयड ग्लैंड एक ऐसा आवश्यक ग्लैंड है जिसके निकाल देने से पूरे शरीर की बायाकैमिस्ट्री एकदम से बिगड़ जाती है और मरीज एक जिंदा लाश की तरह हो जाता है। आप ग्राफ पर गौर करें तो पाएंगे कि सन् 2005 तक थायरॉयड कैंसर के मामले महज जांच की वजह से या जांच के बाद कई गुना बढ़ गए जबकि थॉयराइड कैंसर से होने वाली वास्तविक मृत्यु के आंकड़े 1975 में जितने थे, सन् 2005 में भी उतने ही हैं। मतलब बिल्कुल साफ है कि अस्पतालों की एक ही कोशिश रहती है कि वे आवश्यक रूप से किसी भी बहाने आपको रोगी बना दें। इसके साथ ही एक ऐसी चिकित्सा प्रदान करें, जिसकी आपको कभी आवश्यकता ही नहीं थी।

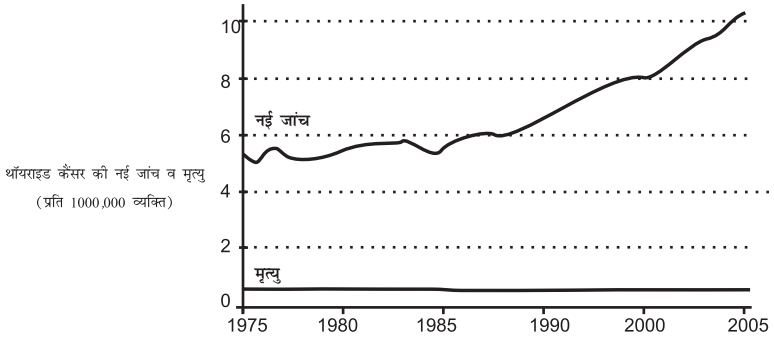

यूएसए में थॉयराइड कैंसर की नई जांच व मृत्यु के आंकड़े(1975-2005)

अब मेमोग्राफी यानी ब्रेस्ट कैंसर स्क्रीनिंग पर जरा गौर कीजिए । अस्पतालों द्वारा यह प्रचारित किया जाता है कि 40 वर्ष की आयु के बाद प्रत्येक महिला को ब्रेस्ट कैंसर होने या होने के लक्षणों का पता चलाने के लिए स्क्रीनिंग करवानी चाहिए। इसी मेमोग्राफी का सच जानने की कोशिश करते हैं:

नेशनल सेंटर फॉर हेल्थ स्टेटिस्टिक्स (यूएस गर्वनमेंट के स्वास्थ्य विभाग का अंग) के अनुसार अगर 2000 महिलाएं लगातार 10 साल तक मेमोग्राफी कराती हैं तो 2000 में से केवल एक महिला को ही इस स्क्रीनिंग का लाभ मिलेगा। मतलब साफ है कि स्क्रीनिंग की वजह से 2000 में से किसी एक महिला का स्तन कैंसर ही शुरुआती स्टेज में पकड़ा जाता है, जिससे उसके स्तन कैंसर के ठीक होने की संभावना बढ़ जाती है।

अब इस बात पर गौर कीजिए कि लगातार मेमोग्राफी से कितनी प्रतिशत महिलाओं को नुकसान होगा। 1992 से 1997 के बीच नॉर्वे सरकार द्वारा प्रायोजित किए गए दो शोधों से यह प्रमाणित हुआ कि मेमोग्राफी की तरंगें शरीर में कैंसर पैदा करती हैं। लगातार छह वर्षों तक अगर किसी महिला ने मेमोग्राफी टेस्ट करवाए तो उसके ब्रेस्ट कैंसर से पीड़ित होने की संभावना लगभग 22 प्रतिशत बढ़ जाती है।

ठीक इसी तरह बार-बार एक्स-रे या एम आर आई द्वारा की जाने वाली जांच-पड़ताल नुकसानदेह हो सकती है।
जरा इन उदहारणों को गौर से देखें:

केस 1. एक महिला मिरगी के दौरे पड़ने के कारण ब्रेन स्कैन के लिए पहुंची।

स्कैन के दौरान उसके साइनस में एक सिस्ट पाया गया। हालांकि सिस्ट का मिरगी के दौरे से कोई लेना-देना नहीं है।

केस 2. एक पुरुष रीढ़ की हड्डी में चोट के कारण एक्सरे कराने गया और रेडियोलॉजिस्ट ने फेफड़ों में एक दाग खोज निकाला। हालांकि इस फेफड़े के दाग का रीढ़ की चोट से कोई लेना-देना नहीं है।

केस 3. एक महिला अपनी सांस लेने की तकलीफ के कारण सीटी स्कैन करवाने गई और अनजाने में ही उसके लिवर में एक गांठ पाई गई। जबकि इस लिवर की गांठ का सांस की दिक्कत से कोई संबंध नहीं है।

इस प्रकार जब शरीर के अंदर स्कैन किया जाता है तो रेडियोलॉजिस्ट का ध्यान किसी न किसी अप्रत्याशित वृद्धि पर चला जाता है। डॉक्टर इस प्रकार की खोज को 'इंस्डिटेल्स' के नाम से बुलाते हैं। ऐसी ग्रोथ आपके शरीर में अक्सर आती और जाती रहती हैं और डॉक्टर उसे अनावश्यक ही कैंसरयुक्त कोशिकाओं में वृद्धि का नाम दे देते हैं। फिर एक अच्छे खासे स्वस्थ व्यक्ति पर कैंसर के सारे इलाज थोप दिए जाते हैं जिसकी उसे कभी जरूरत ही नहीं थी।

आर्काइव्स ऑफ इंटरनल मेडीसिन (1994) की रिपोर्ट के अनुसार अगर किन्हीं स्वस्थ 100 आदमियों के फेफड़ों का सीटी-स्कैन किया जाए तो लगभग 35 प्रतिशत लोगों के फेफड़ों में ऐसी गांठें दिखेंगीं जो कि कैंसर की गांठें प्रतीत होंगी किंतु 99.9 प्रतिशत मामलों में वहां कैंसर की बीमारी से कोई संबंध नहीं होगा।

ठीक इसी प्रकार 100 स्वस्थ लोगों की किडनी के स्कैन में 23 प्रतिशत लोगों की किडनी में सिस्ट दिखाई दिए जो पहली नजर में कैंसरयुक्त प्रतीत हुए, जबकि सही मायने में उनके कैंसरयुक्त होने की संभावना लगभग 0.05 प्रतिशत ही थी।

इसी प्रकार अगर लिवर के सीटी-स्कैन में केवल 15 प्रतिशत लोगों में इंस्डिंटेल्स मिलेंगे। जिसे पहली नजर में ही डॉक्टर कैंसर बता देंगे किंतु पूरे मानव के जीवनकाल में वे लिवर में इंस्डिंटेल्स बिना किसी बदलाव के या शरीर को किसी प्रकार का नुकसान पहुंचाए बिना बस यूं ही पड़े रहेंगे।

तात्पर्य यह है कि अगर आप आधुनिक मशीनों से शरीर के भीतर झांकेंगे तो निश्चित रूप से अवश्य ऐसा कुछ न कुछ मिल ही जाएगा जो मेडिकल की दुनिया में आपके लिए जानलेवा करार दे दिया जाएगा किंतु सच तो यही है कि शरीर में विषैली किरणों के माध्यम से अनावश्यक तांक-झांक करना या शरीर के अंगों के साथ छेड़छाड़ करना आपके लिए घातक सिद्ध हो सकता है।

जितने लोग दवा के न मिलने से मरते हैं, उससे कहीं ज़्यादा लोग दवा खाकर मरते हैं।

– *स्वामी रामदेव*

अध्याय 5

साइड इफेक्ट का कड़वा सच

आधुनिक दवाओं के लिए आजकल एक शब्द का प्रयोग सामान्य रूप से किया जाने लगा है– वह है साइड इफेक्ट या दुष्प्रभाव। प्रायः यह देखा गया है कि रोगों से बचाव के लिए ली गई दवाईयों के दुष्प्रभाव उस रोग से कहीं अधिक घातक व गंभीर होते हैं। उदाहरणस्वरूप यदि आप कॉलेस्ट्राल घटाने वाली दवाईयां लगातार तीन से चार वर्ष तक लेते हैं तो आपको डायबिटीज हो जाती है और प्रायः डायबिटीज की दवाईयों को निरंतर तीन से चार वर्ष तक लेने से कैंसर की संभावनाएं कई गुना बढ़ जाती हैं।

जर्नल ऑफ अमेरिकन मेडिकल एसोसिएशन (1998) के अनुसार 51 प्रतिशत मंजूरशुदा दवाओं के घातक साइड इफेक्ट्स का पता तभी चल पाता है जब मनुष्य उन्हें प्रयोग में लाता है। उदाहरण के तौर पर अलग-अलग जर्नल्स से ली गई रिपोर्टें देखें:

1. **लैंसेट, दिसंबर 1999**, 40 साल के अनुभव के बाद एंटीबायोटिक एरीथ्रोमाइसीन को अब बच्चों में पाई जाने वाली बीमारियों के साथ जोड़ा जा रहा है।

2. **ब्रिटिश मेडिकल जर्नल,** अक्टूबर 1999 के अनुसार कहा जा रहा है कि प्रोज़ैक, प्रैग्जिल, जोलोफ्ट, ट्रैजोडोन आदि दवाओं के कारण अधिक रक्तस्राव होता है जो कि शरीर के लिए घातक सिद्ध हो सकता है। इनमें गैस्ट्रोइंटेस्टाइनल, जेंटीयूरिनरी या इंट्रारीनल रक्तस्राव भी शामिल है। दर्दनिवारक व सूजन आदि को घटाने के लिए दी गई एस्प्रिन जैसी दवाएं भी इस खतरे को काफी हद तक बढ़ा देती हैं।

3. **अमेरिकन जर्नल ऑफ एपिडेमोलॉजी,** मई 2000, पांच दशक के अधययन के बाद यह तथ्य सामने आया है कि ट्रासाइक्लिक एंटीडीप्रेसेंट (इमिप्रेमाइन, एमिट्रिप्टीलिन) ब्रेस्ट कैंसर का खतरा बढ़ा देती है।

4. **जर्नल ऑफ क्लीनिकल साइकोफॉर्माकॉलोजी, जून 2000:** बाजार में हाथों-हाथ बिकने वाली दवाई क्लोजापाइन से भी अचानक होने वाली मौत के अनेक मामले सामने आए हैं।

5. **प्राइमरी साइकाइट्री सितंबर 2000**, लगभग पांच दशक के इस्तेमाल के बाद मेलारिल दवाई को कार्डिएक एरिदमिया के साथ जोड़ा जा रहा है। यह समस्या 30 साल पहले ही पाई गई थी, लेकिन हाल ही में संयोगवश फिर से इसका पता चला है। अब अंततः नोवरटिस फार्मास्युटिकल कंपनी चेतावनी देती है कि इस दवा का प्रयोग तभी किया जाना चाहिए जब अन्य सुरक्षित दवाएं अपना असर न दिखा पाएं।

6. **जेएएमए, 22 नवंबर 2004**, 1998 के शुरुआती दौर में, यू एस में कॉलेस्ट्रॉल कम करने वाली दवा के रूप में सेरीवेस्टाटिन की माकेर्टिंग आरंभ की गई। बाजार में उसके समान मिल रही दवाओं की तुलना में इसकी कम खुराक लेने की सलाह दी गई किंतु आने वाले दिनों में उसका कोई प्रभाव नहीं दिखा तो दवा की मात्रा बढ़ा दी गई। इसका तुरंत प्रभाव हुआ और फिर रैबडोमायोलिसिस का किस्सा सामने आया जिसमें पता चला कि इस दवा के प्रयोग करने वाले अनेक शारीरिक असमान्यताओं व रोगों से ग्रस्त हो रहे थे। निर्माता कंपनियों ने नाम व लेबल आदि बदल कर देखे, अनेक तरह के शोध हुए, स्वास्थ्य विभाग को अनेकों पत्र लिखे गए और आखिर में इन दवाओं को लगभग सात साल बाद बाजार से हटा दिया गया।

7. **द लैंसेट, 1 जनवरी 2005 (वायोक्स दवा),** वायोक्स नामक दर्दनिवारक दवाओं का एक वर्ग नॉन-स्टीरॉयडल एंटी इंफ्लामेट्री ड्रग माना गया था किंतु राष्ट्रीय स्तर पर हुए निष्कर्ष के बाद पता चला कि मर्क एंड कंपनी का यह उत्पाद दिल के दौरों के 88, 000 से 140, 000 मामलों का जिम्मेवार था। इसे 30 सितंबर 2004 को वैश्विक बाजार से हटा दिया गया। इस दर्दनिवारक दवा ने करोड़ों रुपए का मुनाफा कमाया व लाखों अमरीकियों ने बेहिचक इसका सेवन किया किंतु कई साल बाद जब इसके अन्य दुष्प्रभाव सामने आए तब इसे बाजार में बेचने पर पाबंदी लगाई गई।

8. एनल्स ऑफ थोरेसिक सर्जरी-2005, 40 वर्ष तक एप्रोटिनिन के प्रयोग के बाद हुए एक रिव्यू में पता चला कि यह दवा एक अतिशीघ्र प्रभाव दिखाने वाली एलर्जी(एनाफायलैक्टिक) उत्पन्न करती है जो प्राणघातक भी हो सकती है। पेट में तेज दर्द होना, सांस लेने में असामान्य आवाजें आना व उद्वेग आदि इसके अन्य लक्षणों में से हैं। एप्रोटिनिन का प्रयोग पूरी दुनिया में तेजी से फैला और इसके कई नए रूप सामने आए व अंततः इसे 2007 में प्रतिबंधित कर दिया गया।

9. दि लैन्सेट ऑन्कोलॉजी, अगस्त 2009, प्रोग्रेसिव मल्टीफोकल ल्यूकोएनसेफैलोपैथी एक भयानक व प्राणघातक सेंट्रल नर्वस सिस्टम डिसऑर्डर है। रिसर्च ऑन एडवर्स ड्रग्स इवेंट्स एंड रिपोर्टस् द्वारा किए गए एक शोध से पता चला कि जिन रोगियों का इलाज रिटुग्जीमैब, नतालिजुमैब और इफैलिजुमैब जैसी दवाईयों द्वारा किया जा रहा था। उनमें यह विकृति विशेष रूप से पाई गई। दवा के बाजार में उतरने के साढ़े पांच साल बाद उस पर पाबंदी लगा दी गई।

10. **बीएमजे (आर्काइव्स ऑफ डिज़ीज इन चाइल्डहुड)** एफडीए ने 1997 में मोटापे पर काबू पाने व वजन प्रबंधन के लिए सिबुट्रामिन को मंजूरी दी थी। जनवरी 2010 में यूरोपियन मेडीसन एजेंसी ने इसकी मंजूरी पर रोक लगा दी और इसका लाइसेंस भी रद्द कर दिया गया क्योंकि इसके प्रयोग से कार्डियोवास्कुलर रोगों के कई मामले सामने आए थे। इस दवा को 12.9 वर्ष के बाद प्रतिबंधित कर दिया गया।

अब इन सभी उदाहरणों से यह साफ है कि आप एक बीमारी से छुटकारा पाने अस्पताल जाते हैं और उपहार के रूप में एक और बीमारी लेकर लौटते हैं। उदाहरण के तौर पर, जरा सोचिए, एक कैंसर का मरीज अस्पताल जाता है और उसे इलाज के नाम पर कीमोथेरेपी का अत्याचार सहना पड़ता है। कीमोथेरेपी का आधारभूत तंत्र यही है कि वह शरीर के लिए आवश्यक श्वेत रक्त कणिकाओं को लगभग समाप्त कर देता है जो शरीर के रोग प्रतिरोधक तंत्र के लिए आधार का काम करते हैं। इस तरह रोगी कीमोथेरेपी के दुष्प्रभावों से ग्रस्त हो कर लौटता है। रोग प्रतिरोधक क्षमता के अभाव में अनेक कठिनाईयों व

दुष्प्रभावों का सामना करना पड़ता है। आप इन सभी लक्षणों की तुलना एड्सग्रस्त रोगियों के लक्षणों से कर सकते हैं क्योंकि उनके शरीर में भी वही लक्षण पाए जाते हैं जिन्हें हम कीमोथेरेपी करवाने के बाद पाते हैं। निम्नलिखित तुलनात्मक लक्षणों पर ध्यान दें:

कीमोथेरेपी	**एड्स**
1. विषैले रासायनों के साथ की जाती है।	ह्यूमन इम्युनो वायरस द्वारा संक्रमण
2. शरीर में रक्त, मांसपेशियों, त्वचा व हड्डी द्वारा रसायन डाले जाते हैं।	संक्रमित रक्त, सुई, रक्त प्रत्यारोपण या असुरक्षित संभोग द्वारा यह वायरस फैलता है।
3. संक्रमण के पहले लक्षण कीमो के दो तीन सप्ताह बाद रोग प्रतिरोधक क्षमता के निम्नतम स्तर तक पहुंचते हैं।	संक्रमण के पहले लक्षण दो तीन सप्ताह बाद रोग प्रतिरोधक क्षमता के निम्नतम स्तर तक पहुंचते हैं।
4. लक्षण- फ्लू, बुखार,ठंड, जोड़ों का दर्द, जी मिचलाना, उल्टी आना व थकान।	फ्लू, लीवर, सिरदर्द, थकान व लिंफ नोड में वृद्धि होना।
5. विषैले रसायन लाल व सफेद रक्त कणिकाओं व उनके अंगों टी सैल्स और प्लेट्लेटस को नुकसान पहुंचाते हैं जिससे रोग प्रतिरोधक क्षमता प्रभावित होती है।	वायरस टी सैल्स को नष्ट कर देता है जिससे रोग प्रतिरोधक क्षमता प्रभावित होती है।
6. रोगी निमोनिया व हेपेटाइटिस जैसे संक्रमणों के प्रति अति संवेदनशील हो जाता है	रोगी निमोनिया व हेपेटाइटिस जैसे संक्रमणों के प्रति अति संवेदनशील हो जाता है।

7. ल्यूकीमिया, तथा पाचन संबंधी सेकेंडरी कैंसरों को बढ़ाता है।	यह ट्यूमर कापोसी सार्कोमा, नॉन हॉजकिन लिंफोमा, सर्वाइकल कैंसर, लिवर कैंसर व लंग कैंसर आदि की संभावना बढ़ाता है।
8. कीमोथेरेपी के कारण दिमाग का आकार छोटा या बड़ा हो सकता है।	एचआईवी संक्रमण से भी दिमाग का आकार छोटा या बड़ा हो सकता है।
9. न्यूरोपैथी या ब्रेन डिस्ऑर्डर होने की संभावना बढ़ जाती है	भ्रम, भूलना, व्यवहार में आने वाले बदलाव, हाथों या टांगों में संवेदनशीलता की कमी होना आदि न्यूरालॉजिकल डिस्आडर्स होना
10. कुछ माह से दस साल तक का जीवनकाल	कुछ माह से दस साल तक का जीवनकाल
11. कीमो से भले ही कैंसर उस समय दब जाता है किंतु इसके बार-बार होने की संभावना बढ़ जाती है। कैंसर का इलाज नहीं हो सकता। इसे कीमोथेरेपी से ठीक करने की कोशिश की जाती है।	एड्स का इलाज नहीं होता। वायरस को शरीर से बाहर नहीं निकाला जा सकता।
12. मरीज को आजीवन कीमोथेरेपी करवाते हुए चिकित्सक की सलाह पर चलना होता है।	मरीज को आजीवन इलाज कराते हुए चिकित्सक की सलाह पर चलना होता है

इस सूची को देख कर आप स्वयं ही अनुमान लगा लें कि कैंसर का मरीज अस्पताल में अपने कैंसर के इलाज के लिए जाता है किंतु वापिस लौटता है तो एड्स के लक्षण भी उपहारस्वरूप उसके साथ होते हैं।

दवाइयां अनिश्चित निर्देशों का संग्रह होती हैं,
जिनका असर मनुष्य के लिए उपयोगी होने से
अधिक हानिकारक होता है।

– *नेपोलियन बोनापार्ट*

अध्याय-6

कोख से कब्र तक (भाग-1)

इतिहास गवाह है कि दुनिया के अमीर से अमीर लोग भी अक्सर बीमारी की चपेट में आने के कुछ समय बाद ही जान गंवा देते हैं। उनकी सारी संपत्ति भी उनकी जान नहीं बचा पाती। बीमारी के लिए न कोई अमीर है न गरीब, न कोई बड़ा है न छोटा। बीमारी धर्म का भेदभाव नहीं करती, यहां तक कि बड़े से बड़ा अस्पताल का भवन और उसमें रखी गई कीमती मशीनें भी किसी मरीज के जीवनकाल को बढ़ा नहीं सकती। डब्ल्यूएचओ की रिपोर्ट के मुताबिक विकसित देशों में 10 प्रतिशत मृत्यु का कारण 'एट्रोजेनिक' यानि अस्पताल की गलतियां और दवाइयों के साइड इफेक्ट्स हैं।

विज्ञान कहता है कि जब कोई मरीज मृत्यु की कगार पर होता है तब मरने के कुछ मिनट पहले तक उसके शरीर की लगभग 50 ट्रिलियन कोशिकाओं में से केवल एक प्रतिशत कोशिकाएं ही विरोधी होती हैं जो कि उस इंसान को मृत्यु की ओर खींचती हैं जबकि 99 प्रतिशत कोशिकाएं आखिरी घड़ी तक जीना चाहती हैं। इसका अर्थ यह है कि जीवन की यह जंग जीती जा सकती है और अपने लिए यह काम सिर्फ आप ही कर सकते हैं क्योंकि आप ही खुद से जुड़े हैं और उन सारी 50 ट्रिलियन कोशिकाओं से आपका सीधा संबंध है। यही नहीं उनका नियंत्रण भी आपके पास ही है। मरीज चाहे कैंसर की चौथी स्टेज पर हो या डायबिटीज की एडवांस्ड स्टेज पर, खोई हुई सेहत फिर से वापस पाई जा सकती है। यह एक ऐसा साइंटिफिक सीक्रेट नॉलेज (वैज्ञानिक गुप्त रहस्य) है जिसकी मदद से किसी भी बीमारी को तीन से छह महीने में दूर किया जा सकता है। इसे 'यूनिवर्सल लॉ ऑफ रीबैलेंस' के नाम से जाना जाता है।

दुनिया में सात ऐसी सभ्यताएं हैं, जहां अक्सर लोग अपना 100वां जन्मदिन मनाते हैं, वह भी बिना किसी बीमारी के। उन जगहों पर डायबिटीज,

कॉर्डियोवास्कुलर डिज़ीज, कैंसर व माइग्रेन जैसी बीमारियां बहुत ही कम देखने को मिलती हैं इसलिए वहां दवाईयों की दुकानें, अस्पताल और डॉक्टर भी न के बराबर ही देखने को मिलते हैं। उन सातों सभ्यताओं में एक चीज समान है और वह यह है कि जाने-अनजाने में ही वे 'यूनिवर्सल लॉ ऑफ रीबैलेंसिंग' का पालन करते हैं।

अब आगे की कहानी बड़ी ही दिलचस्प है। इसे जानने के बाद आपका और आपके परिवार का मेडिकल बिल आजीवन जीरो रहने वाला है यानी दवाओं व डॉक्टरों की फीस पर होने वाले खर्च से छुटकारा!

अब हम जो बातें करने जा रहे हैं, वे न केवल आपको स्वस्थ बनाएंगी बल्कि यह खास ज्ञान आपके साथ-साथ दूसरों को भी जीवन भर स्वस्थ रहने में मदद करेगा और आप रोगमुक्त व निरोगी रह पाएंगे।

तारीख थी- 28 अक्टूबर, जगह- हो ची मिन्ह सिटी, वियतनाम का एक खूबसूरत शहर। सुबह के 8 बज रहे थे और मैं इंटरनेशनल कांफ्रेंस ऑफ रिकॉर्ड्स बुक्स के लिए तैयार हो रहा था। वहां मैं एशिया बुक ऑफ रिकॉर्ड्स के मुख्य संपादक की हैसियत से भाग ले रहा था। फाइनल प्रोग्राम की ब्रीफिंग के लिए मेरे आयोजकों का फोन आया और मुझे पता चला कि हमारे कांफ्रेंस का एक खास आकर्षण है, एक ऐसी हस्ती, जिनका नाम है- **लेडी ट्रेन-थी-वीएत**। मुझे लगा मैंने ये नाम कहीं सुना है, शायद किसी मशहूर फिल्म स्टार का है। मेरा फोकस कांफ्रेंस से हटकर अब इस मुलाकात पर टिक गया। यह एक दिलचस्प एहसास था। कांफ्रेंस अपने समय पर शुरू हुई। कांफ्रेंस के अंत में एक घोषणा हुई। सब खड़े हो गए। स्टेज पर थी लेडी ट्रेन। मेरा नाम बुलाया गया। मैं भी स्टेज पर पहुंचा। लेडी ट्रेन ने मुझे एक तोहफा दिया और अपना हाथ मेरे सिर पर रखा। मेरी नजर उनकी नजर से मिलते ही मुझे एहसास हो गया कि यह मेरी जिंदगी का एक खूबसूरत पल है क्योंकि मेरी मुलाकात 119 वर्षीय दुनिया की सबसे वृद्ध महिला से हो रही थी और वह तोहफा था, उनके हाथ से बना उनका पोर्टेट, जिस पर वियतनाम सरकार द्वारा जारी उनकी

दीर्घायु का प्रमाण पत्र भी छपा था। मेरे दिमाग में सवाल आया कि उनके इतने लंबे व स्वस्थ जीवन का क्या कारण हो सकता है? यह कारण वंशानुगत है या कुछ और?

फिर मुझे उनके परिवार से मिलने का मौका मिला। मुझे पता चला कि उनके परिवार के अन्य सभी सदस्यों की औसत आयु लगभग 65 से 75 साल ही है। इसका मतलब यह हुआ कि उनकी लंबी आयु के लिए जीन्स उत्तरदायी नहीं थे। कुछ और समय उनके परिवार के साथ बिताने पर उनकी कुछ खास आदतें और बहुत ही अलग लेकिन एक साधारण डाइट प्लान के बारे में पता चला। मैंने एशिया बुक ऑफ रिकॉर्ड्स के रिपोर्टरों के द्वारा इकट्ठा किए गए उन सात सभ्यताओं के आहार संबंधी पैटर्न से तुलना की तो पाया कि उन सबका डाइट प्लान और लेडी ट्रेन का डाइट प्लान काफी मिलता-जुलता था। मैंने यह भी देखा कि उन सबका हीलिंग मैकेनिज्म(आरोग्य तंत्र)भी एक सा ही है और वह है-'यूनिवर्सल लॉ ऑफ रीबैलेंसिंग'। यह मेरे लिए एक बहुत ही खास खोज थी क्योंकि इसमें बिना किसी दवाई के किसी भी बीमारी से आजादी पाने का रहस्य छिपा था। इस खोज की सार्थकता की जांच के लिए मैंने कई देशों और प्रांतों का सफर तय किया और 100 से ज्यादा हेल्थ से जुड़े विशेषज्ञों, डॉक्टरों, वैज्ञानिकों, हेल्थ गुरु और शोधकर्ताओं से मिला। इसके अतिरिक्त मैंने 200 से ज्यादा स्वास्थ्य से जुड़ी अंतर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं और इंटरनेशनल मेडिकल विश्वविद्यालयों द्वारा आयोजित 50 से ज्यादा वार्ताओं के रिपोर्ट्स को रेफर किया और एशिया बुक ऑफ रिकाड्र्स की टीम की मदद से अलग-अलग देशों के 100 से ज्यादा ऐसे खिलाड़ियों से मिला, जिन्होंने फिजिकल इन्ड्यूरेंस में वर्ल्ड रिकॉर्ड कायम कर गिनीज वर्ल्ड रिकॉर्ड में अपना नाम दर्ज कराया था। हमने उनकी जीवनशैली और खानपान की आदतों को जाना और रिकॉर्ड किया। अंत में हम अलग-अलग महादेशों के ऐसे लोगों से मिले जिन्होंने 100 साल की आयु पार की थी। उनकी सोच, खान-पान और रहन-सहन का अध्ययन किया और सामने आया एक ऐसा रहस्य, जिसे अनदेखा नहीं किया जा सकता। इस

अनोखे सच को विस्तार से जानने के लिए हमें हीरोशिमा और नागासाकी पर हुए 'परमाणु हमले' के दुष्प्रभाव को जानना होगा।

आज हीरोशिमा और नागासाकी में जब किसी शिशु का जन्म होता है तब लोग यह नहीं पूछते कि लड़का हुआ या लड़की? बल्कि यह पूछते हैं कि बच्चा कौन सी विकलांगता या विकृतियों के साथ पैदा हुआ है? आज भी जब वहां बच्चे पैदा होते हैं तो कई तरह की शारीरिक और मानसिक विकृतियों के साथ ही पैदा होते हैं। यह 6 अगस्त 1945 का दुखद दुष्प्रभाव है। इतिहास के पन्नों का वह काला दिन, जब अमेरिका ने दूसरे विश्वयुद्ध में हीरोशिमा और नागासाकी पर एटम बम गिराया था। इस हादसे में लगभग ढाई लाख लोग तत्काल मारे गए और जो लोग बच गए, उनकी पीढ़ियों में आज भी कई विकृतियां देखने को मिल रही हैं। मतलब यह है कि एटम बम का असर इतना विनाशक था कि उसके असर के बावजूद जो कुछ लोग जिंदा बच गए, वे अपने जीन्स पर विस्फोट के असर को रोक नहीं पाए। और उनकी आने वाली कितनी ही पीढ़ियों में जीन्स के माध्यम से वे विकृतियां चली गईं। दुख की बात यह है कि शारीरिक और मानसिक विकृतियां मृत्यु के साथ ही खत्म नहीं होतीं बल्कि जीन्स के जरिये वे आने वाली पीढ़ी में भी चली जाती हैं। डब्ल्यूएचओ ने आने वाली पीढ़ियों में इन शारीरिक बीमारियों के चले जाने को एक नाम दिया है–इनहेरिटेड मेटाबॉलिक सिंड्रोम (आईएमएस)।

इसी प्रकार कुछ घातक दवाएं या खाने–पीने की चीजें भी (जिनका सेवन हम जाने–अनजाने करते हैं) न केवल हमें बीमार करती हैं बल्कि प्रोग्रामिंग में बदलाव कर जीन्स के जरिये इन बीमारियों को हमारी अगली पीढ़ी में भेज देती हैं। उदाहरणस्वरूप–

डीईएस, जो कि गर्भावस्था की जटिलताओं को नियंत्रित करने के लिए 1940 से 1970 तक गर्भवती महिलाओं को दी गई, 1970 के बाद यह पाया गया कि ऐसे जो बच्चे डीईएस मां के गर्भ से जन्में थे वे मानसिक और शारीरिक विकृतियों से ग्रस्त थे। यहां तक कि उनके परपोतों–परपोतियों में भी ये कमियां पाई गईं। विज्ञान की दुनिया में ऐसे बच्चों को डीईएस चिल्ड्रन के नाम से बुलाया जाने लगा और 1971 में पूरे विश्व में डीईएस दवाओं को बैन कर दिया

गया। भारत में भ्रष्टाचार और दवा कंपनियों की मिलीभगत की वजह से इस दवा को बैन करते-करते लगभग 19 साल गुजर गए और अंततः यूनिवर्सिटी के केस स्टडी के अनुसार, डॉ. मीरा शिवा जैसी मेडिकल स्पेशलिस्ट के अथक प्रयासों के बाद 1989 में सरकार ने ऐसी दवाओं को बैन कर दिया, लेकिन तब तक लगभग 10 करोड़ माएं इस दवा का शिकार हो चुकी थीं। इसके बावजूद बात यहीं खत्म नहीं होती। आज जानबूझकर 90 प्रतिशत से ज्यादा दवाओं और पैक्ड फूड्स में ऐसी चीजें मिलाई जाती हैं जिनसे न केवल आप और हम कई गंभीर और लंबे समय तक रहने वाली बीमारियों का शिकार होते हैं बल्कि इसका असर हमारी आने वाली पीढ़ी को भी भुगतना पड़ता है।

मुझे आज भी याद है वह दिन, जब मैं दूसरी कक्षा में पढ़ता था और मेरे साथ वाली सीट पर मेरा पक्का दोस्त बैठता था। लगभग एक महीने तक वह दोस्त स्कूल नहीं आया। मुझे पता चला कि वह बीमार है और महीने भर से हॉस्पिटल में भर्ती है। एक दिन स्कूल में मुझे पता चला कि वह मुझसे मिलना चाहता है। मैं पिताजी के साथ अस्पताल पहुंचा। उसने स्कूल के होमवर्क और टेस्ट के बारे में पूछा और आखिर में मुझे कहा कि अपना ख्याल रखना। उस वक्त मुझे नहीं पता था कि मैं उससे आखिरी बार मिल रहा हूं। आज मैं सोचता हूं कि अगर तब ये रहस्य मुझे पता होता तो आज मेरा वह दोस्त जीवित होता। अब आपके सामने है एक ऐसा रहस्य, जिसे समझने के बाद आप अपने आसपास के हजारों लोगों और खुद को रोगमुक्त कर पाएंगे।

ऐसा नहीं है कि यह सिर्फ सभी रोगों के खात्मे की नई शुरुआत भर होगी बल्कि यह सभी नई तथाकथित दवाओं, दवा उद्योग और मल्टी स्पेशलिटी हॉस्पिटल के अंत की शुरुआत भी कही जा सकती है। इस पूरे चक्रव्यूह को समझने के लिए इन कहानियों पर गौर करें, जो अगले अध्यायों में आपको क्रमशः पढ़ने को मिलेंगीं

कहानी का नाम है, 'अप्पू और पप्पू'।

अप्पू एक हाथी का बच्चा है जबकि पप्पू एक इंसान का। आज से 500 साल पहले हाथी की औसत आयु थी- 70 साल, जो आज भी इतनी ही है। जबकि

आज से 500 साल पहले मानव की औसत आयु थी लगभग 110 साल जो कि आज सिमट चुकी है 75 साल में।

अप्पू और पप्पू के जीवन के सफर के माध्यम से यह जानने की कोशिश करते हैं कि इंसान की आयु के कम होने के पीछे का सच क्या है?

तारीख - 12 जनवरी 1990। अप्पू का जन्म जंगल में हुआ जबकि पप्पू का हॉस्पिटल में, सीजेरियन डिलीवरी से।

आप भी सोच रहे होंगे कि मैंने सीजेरियन डिलेवरी शब्द का प्रयोग क्यों किया या ऐसी नौबत ही क्यों आई? ऐसी क्या वजह रही कि पप्पू का जन्म सामान्य प्राकृतिक रूप से नहीं हो सका?

डब्ल्यूएचओ के 2007-2008 इंडिया सेंट्रीक रिपोर्ट के अनुसार भारत के अस्पतालों में 27 प्रतिशत सीजेरियन सेक्शन पाया गया और मुख्यतः प्राइवेट हॉस्पिटल में सीजेरियन सेक्शन सर्जरी की वजह ज्यादा लाभ कमाना बताई गई।

डब्ल्यूएचओ की रिपोर्ट यह भी कहती है कि जरूरत न होने पर भी जिन महिलाओं को सी-सेक्शन के लिए बाध्य कर दिया जाता है, वे लगभग मौत के कगार पर पहुंच जाती हैं या उन्हें आईसीयू में भर्ती होना पड़ता है या फिर उन्हें कई तरह की परेशानियों का सामना करना पड़ता है। यही नहीं, जिन बच्चों का जन्म सी-सेक्शन से होता है, उन्हें जीवन भर श्वसन संबंधी परेशानियों से जूझना पड़ता है।

दुख की बात यह है कि बच्चे का पैदा होना ही कुछ लोगों के लिए व्यापार बन गया है, चाहे उससे बच्चे और मां, दोनों की जान खतरे में ही क्यों न पड़ जाए!

चलिए अब जानते हैं अप्पू और पप्पू की आगे की कहानी।

उम्र लगभग डेढ़ साल, अप्पू और पप्पू अपने पैरों पर चल रहे थे, खेल रहे थे। यहां सी-सेक्शन डिलीवरी के कारण पप्पू के जीवन की दूसरी मुख्य समस्या यह थी कि पप्पू को दूसरे इंसानी बच्चों की तरह 25 दर्दनाक और जहरीले वैक्सीन का सामना करना पड़ा।

गौर करने वाली बात यह है कि यूं तो यह वैक्सीन आपको कई तरह की

बीमारियों, जैसे- पोलियो, हेपेटाइटिस बी, ए, मीजल्स, मम्प्स, डिप्थेरिया आदि से बचाने का वादा लेकर आते हैं लेकिन आज यह साफ है कि वैक्सीन की वजह से अधिकतर बच्चे ऑटिज्म जैसे मेंटल डिस्ऑर्डर का शिकार होते जा रहे हैं। आज से 20 साल पहले 500 में से एक बच्चा ऑटिज्म का शिकार था तो आज 37 में से एक ऑटिज्म का शिकार है और ऑटिज्म के साथ-साथ डायबिटीज टाइप वन और कई ऑटो इम्यून डिजीज का कारण भी ये वैक्सीन ही हैं।

ज्यादातर वैक्सीन में मरकरी पाया जाता है जो कि रेडियो एक्टिवतत्वों के बाद दुनिया का सबसे जहरीला पदार्थ माना जाता है इसलिए यूरोपियन एजेंसी ऑफ इवेल्यूशन ऑफ मेडिकल प्रोडक्ट्स (ईएमईए) की सलाह के बाद डेनमार्क, यूके, फ्रांस, स्वीडन सहित कई देशों में पिछले कुछ सालों में वैक्सीन पहले से ही बैन कर दिए गए हैं, लेकिन भारत में बच्चों पर वैक्सीन का अत्याचार आज भी बड़े जोर-शोर से चल रहा है। शायद भारत सरकार को बच्चों की सेहत से ज्यादा वैक्सीन बनाने वाली दवा कंपनियों की सेहत की चिंता है। मामले की गहराई को समझने के लिए जानते हैं दुनिया के विकसित देशों में इस मुद्दे पर छिड़ी चर्चा के एक अंश को जानना होगा:

यह अंश हमने कांग्रेसमैन डैन बरटन, चेयरमैन गर्वनमेंट रिफोर्म कमेटी और डॉ. केरन मिथुन, एफडीए, ऑफिस ऑफ वैक्सिन रिसर्च एंड रिव्यू के बीच की चर्चा से लिया है:

डैन बरटन- आजकल डॉक्टर एक मरकरी वाला इंजेक्शन, थीमेरोसल बच्चों को दे रहे हैं।

डॉ. केरन मिथुन- मैं ऐसा नहीं मानती। सारी वैक्सिनेशन डॉक्टर द्वारा बताई गई बचपन में दी जाने वाली इम्युनाइजेशन सीरीज का ही हिस्सा है। 2001 के बाद, मरकरी का उपयोग नाममात्र हो रहा है या यूं कहें कि थीमेरोसल रहित इंजेक्शन बनाए जा रहे हैं।

डेन बरटन- क्या मुझे अभी बता सकती हैं? क्या मुझे किसी भी संदेह के बिना

बता सकती हैं कि इंजेक्शन में पाई जाने वाली मरकरी न्यूरोलॉजिकल समस्याएं पैदा नहीं करती है।

डॉ. कैरन मिथुन– मैं नहीं जानती कि किसी भी तरीके से मरकरी और न्यूरोलॉजिकल समस्याओं के बीच के इस अप्रत्यक्ष संबंध को माना जा सकता है या नकारा जा सकता है।

डैन बरटन– जब आप एक या दूसरे तरीके से इस बारे में कुछ जानती ही नहीं तो आप इसे प्रयोग में क्यों ला रही हैं? अगर कुछ एपिडेमिक ऑफ ऑटिज्म है तो इसके प्रयोग का मतलब ही नहीं बनता। सारे अध्ययनों के अनुसार यह साफ दिख रहा है कि आप स्वयं इस बारे में भ्रमित हैं?

डॉ. कैरन मिथुन– मुझे लगता है कि आपको इन टीकों से होने वाले लाभों को देखते हुए हानियों व दुष्प्रभावों को नज़रअंदाज कर देना चाहिए।

इस चर्चा से आप इतना तो समझ ही गए होंगे कि मरकरी बच्चों के ब्रेन के न्यूरॉन को नुकसान पहुंचाता है जिससे कई प्रकार के मेंटल डिस्ऑर्डर शुरू हो जाते हैं। डब्ल्यूएचओ की रिपोर्ट के अनुसार, दुनिया के लगभग 10 प्रतिशत लोग आज मेंटल डिस्ऑर्डर का शिकार हैं। अब आप साइकायट्रिक दवाओं के पीछे के सच को समझने व जानने की कोशिश करें।

इन दवाओं का प्रयोग शुरू करने से पहले अन्य दवाओं की तरह इसे जानवरों पर टेस्ट नहीं किया जाता क्योंकि जानवर बमुश्किल किसी साइकायट्रिक समस्या से ग्रस्त होते हैं। यही कारण है कि इसे सीधे मनुष्य पर ही टेस्ट किया जाता है। इन साइकायट्रिक दवाओं के बारे में दूसरा सच यह है कि कोई नहीं जानता कि यह काम कैसे करता है या इसका असर कैसा होता है, यहां तक कि खुद दवा निर्माता कंपनियां भी इस बारे में नहीं जानतीं। 100 से ज्यादा सायकाइट्रिक मेडीसीन पत्रिकाओं की मानें तो अब तक इस दुनिया के एक व्यक्ति को भी इन साइकायट्रिक दवाओं का लाभ नहीं मिल पाया है।

मेडिकल काउंसिल ऑफ इंडिया के गाइडलाइंस के अनुसार, पीजी और साइकायट्री में एमडी कोर्स करने के लिए जो पाठ्यक्रम बनाया गया है, उनमें मन और विचार से जुड़ा एक भी पाठ नहीं है और न ही यह बताया गया है कि

मानव शरीर पर इसका क्या असर होता है! तथ्यों की गहराई में जाने के लिए जरा इस उदाहरण पर गौर फरमाएं:-

कल्पना कीजिए कि यह टायर ब्रेन को संबोधित करता है और इसके अंदर की हवा सेरोटोनिन हारमोन को, जो कि मेंटल बैलेंस बनाए रखने के लिए उत्तरदायी है। यहां पिन मस्तिष्क में बार-बार आने वाले नकारात्मक विचारों को इंगित कर रहा है। अब इसे समझने की कोशिश कीजिए। पिन रूपी नकारात्मक विचार आपके मस्तिष्क के न्यूरॉन को नुकसान पहुंचाता है जिससे सेरोटोनिन की मात्रा कम होने लगती है। जब आप साइकायट्रिक मेडीसिन लेते हैं तो वह मस्तिष्क में सेरोटोनिन की मात्रा को दोबारा बैलेंस करने की कोशिश करता है, लेकिन समझने की बात यह है कि पिन रूपी नकारात्मक विचारों को हटाए बिना अगर आप सेरोटोनिन के दबाव को बढ़ाएंगे तो ब्रेन डैमेज होने का खतरा और बढ़ेगा इसलिए प्रिंसटन यूनिवर्सिटी की रिपोर्ट के अनुसार, एंटी-डिप्रेशन मेडीसिन लेने वालों में आत्महत्या करने की प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है और उनके बच्चों में अक्सर कई तरह के जन्म संबंधी विकार भी पाए जाते हैं।

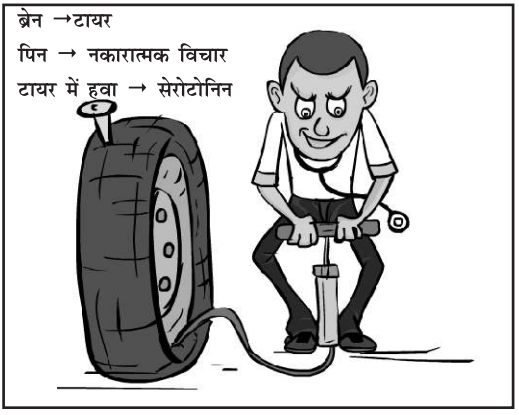

अब चलते हैं अप्पू और पप्पू की कहानी के अगले पड़ाव में:

अब दोनों लगभग दो-ढाई साल के हैं। अप्पू अपनी मां के दूध का सेवन करता है और पप्पू डॉक्टर द्वारा सुझाए गए मार्केट में पाए जाने वाले मिल्क पाउडर का। अब माता-पिता यह समझ ही नहीं पाते हैं कि वे जो मिल्क पाउडर अपने पसीने की कमाई से खरीदकर बच्चों को अच्छी सेहत की उम्मीद में पिला रहे

हैं, वही मिल्क पाउडर उन्हें शारीरिक रूप से जीवन भर के लिए ऑटो-इम्यून डिज़ीज का शिकार बनाने वाला है।

1970 से 2006 के बीच की गई चाइना स्टडी के अनुसार, जिन बच्चों को गाय का दूध दिया जाता है, उनकी रोग प्रतिरोधक क्षमता कम होती जाती है जिससे वे गाय के दूध में मौजूद प्रोटीन फ्रेगमेंट्स और पैनक्रिएटिक सैल्स के बीच अंतर महसूस नहीं कर पाते। इससे कई तरह की आटो इम्यून डिज़ीज की संभावना बढ़ती है और बच्चा कम उम्र में ही टाइप-वन डायबिटीज का शिकार हो जाता है।

याद रखें, बाजार में मिलने वाले हेल्थ ड्रिंक पाउडर, जैसे- सेरेलेक, बूस्ट, बॉर्नविटा, माल्टोवा और हॉर्लिक्स, लंबे समय के बाद बच्चों की सेहत के लिए हानिकारक साबित होते हैं।

लगभग तीन साल के बाद अप्पू और पप्पू के जीवन में एक बदलाव दिखा।

अप्पू अब दूध पीना छोड़ चुका है जबकि पप्पू 10वां साल पूरा करते हुए भी दूध का सेवन कर रहा है, वह भी स्वादिष्ट मिल्क पाउडर तथा हेल्थ ड्रिंक्स के साथ।

दुनिया के इतिहास में मानव ही एक ऐसा जीव है, जो दूसरे जीव का दूध पीता है और जीवनभर दूध पीता है। हालांकि प्रकृति ने हमारे शरीर को कुछ इस तरह डिजाइन किया है कि पहले कुछ वर्षों तक ही हमें दूध की आवश्यकता होती है, वह भी मां के दूध की।

आने वाले अध्यायों में हम यह जानेंगे कि अप्पू ने पौष्टिक खाद्यपदार्थों से मुंह मोड़ कर केवल दूध और फास्ट फूड से पेट भरने की जो बुरी आदत पाल ली है। इसके क्या-क्या दुष्परिणाम हो सकते हैं?

''अगर दुनिया की सारी दवाइयों को
समुद्र में फेंक दें तो इंसानियत के लिए अच्छा
होगा परंतु सवाल यह है कि फिर मछलियों
का क्या होगा''

- ओ. डब्ल्यू. होम्स

अध्याय-7

कोख से कब्र तक (भाग 2)

तारीख- 12 जनवरी 2000 यानी अप्पू और पप्पू की 10वीं सालगिरह। यह क्या! अप्पू तो अपने जन्मदिन को भुलाकर रोज की तरह एक सामान्य जीवन जी रहा है जबकि पप्पू अपने जन्मदिन के समारोह की सारी तैयारियां कर चुका है। चारों ओर खाने-पीने का सामान है, पिज्जा, बर्गर, फ्रेंच फ्राइज़, चिप्स, कोल्ड ड्रिंक्स, केक, पेस्ट्रीज।

अब इस कहानी को आगे बढ़ाने से पहले जानते हैं फास्ट फूड और पैक्ड फूड का कड़वा सच, फास्ट फूड से जुड़ी तीन अनसुनी सच्ची कहानियां:-

पहली कहानी का शीर्षक है, **'मृत्यु से भयंकर'**

यह शीर्षक पढ़ कर आप चौंक गए न कि भला ऐसा भी क्या हो सकता है कि जो मृत्यु से भी भयंकर हो। मृत्यु से भी भयंकर तो कुछ ऐसा ही हो सकता है, जो व्यक्ति के मर जाने के बाद भी अपनी भयंकरता या विकरालता के साथ विद्यमान रहे। हमारे बीच अनेक ऐसे तत्व हैं, जो इसी श्रेणी में आ रहे हैं। इनकी भयावहता मृत्यु से भी कहीं आगे है। मृत्यु के बाद तो एक जीवन समाप्त होता है किंतु ये कारक भावी पीढ़ियों पर भी अपना दुष्प्रभाव बनाए रखते हैं।

आज मैं आपके समक्ष कुछ ऐसे ज्वलंत प्रश्न रखने जा रहा हूं, जो भले ही अनुत्तरित रहें किंतु इतना तो निश्चित है कि मेरे इन प्रश्नों को सुनने व इस पूरे पाठ को पढ़ने के बाद आप एक क्षण के लिए इस विषय पर विचार करने के लिए विवश अवश्य हो जाएंगे।

मैं आज के माता-पिता से पूछना चाहता हूं कि क्या उन्होंने कभी यह सोचने की कोशिश की है कि उनके बच्चे इतने नाज़ुक क्यों हैं? उनकी रोग प्रतिरोधक क्षमता इतनी कमजोर क्यों है कि उन्हें बीमार पड़ते देर नहीं लगती? वे सभी प्रकार के विटामिनों की गोलियां लेते हैं, डिब्बाबंद जूस पीते हैं, वातानुकूलित कक्षों में रहते हैं, जन्म के पहले से ले कर अब तक, हर प्रकार की

चिकित्सकीय सुविधाएं पाते हैं, उनको रहने के लिए बेहतर परिवेश व साफ-सुथरा माहौल मिलता है, हर तरह का स्वादिष्ट भोजन खाने को दिया जाता है। उनके पास संसार की वे सभी सुख-सुविधाएं मौजूद हैं, जिनकी कामना हर व्यक्ति करता है परंतु आज से दस-बारह साल पहले वाले बच्चों से यदि उनकी तुलना करें तो वे उनके मुकाबले ज्यादा बीमार पड़ते हैं। उनके शरीर भले ही फूले हुए और गदबदे लगें पर भीतर से वे खोखले हैं। उनकी हल्की-फुल्की बीमारी को भी ठीक होने में बहुत समय लग जाता है। उनका मानसिक व बौद्धिक विकास भी अन्य बच्चों की तुलना में बेहद कम है। बेशक आप भी इन प्रश्नों के उत्तर जानना चाहेंगे... है न!

यदि आप सचमुच ये सच्चाई जानना चाहते हैं तो आपको एक कहानी और सुननी होगी, जिसका शीर्षक है- **ब्रेन में घोटाला**

ब्रेन यानी मस्तिष्क (दिमाग) और घोटाले का मतलब है 'गड़बड़ होना'।

यह कहानी सन् 1908 की है। इसके नायक हैं, सुजुकी ब्रदर्स। ये दोनों जापानी भाई एक चीनी रेस्त्रां के मालिक थे। प्रायः रेस्त्रां में आने वाले ग्राहकों को खाद्य पदार्थ परोसने के बाद वे उनके हावभाव और व्यवहार की निगरानी करते। ये दोनों एक कोने में बैठते और कोई जान भी नहीं पाता था। आप इन दोनों भाईयों के वार्तालाप पर गौर करें:

पहला भाई- भाई! तुमने देखा कि आज भी कितने कम ग्राहक आए और बस नाममात्र का ही भोजन किया।

दूसरा भाई- हां, लगता है कि इनके पेट चींटियों के पेट जैसे हैं जो ज़रा सा खाना खाते ही भर जाते हैं।

पहला भाई- पर यदि यही सिलसिला जारी रहा तो रेस्त्रां पर ताला लगाने की नौबत आ जाएगी।

दूसरा भाई- नहीं-नहीं, हम कोई न कोई ऐसा तरीका खोज निकालेंगे कि लोग हमारा खाना ज्यादा से ज्यादा मात्रा में खाएंगे। वे जितना खाएंगे, हमारा लाभ उतना ही बढ़ता जाएगा।

उस दिन तो दोनों भाईयों ने अपने मन की बात कह कर दिल हल्का कर लिया किंतु दूसरे भाई के दिमाग में यह बात बैठ गई। वह उसी शाम अपने एक वैज्ञानिक मित्र से मिला और उसे भाई से मिलवाने ले आया।

पहले भाई ने वैज्ञानिक से कहा, "मित्र! कोई ऐसा चमत्कार कर दो कि हमारे यहां आने वालों को इतनी भूख लगे कि हमारा बनाया सारा खाना खत्म हो जाया करे।" वैज्ञानिक उन्हें तसल्ली दे कर लौट गया और कुछ दिनों के बाद मिलने को कहा।

इसी तरह कुछ समय बीत गया और एक दिन वैज्ञानिक उनके रेस्त्रां में पहुंचा। उसने दोनों भाईयों के सामने एक शीशी रख दी जिसमें कोई रसायन भरा था। उसका नाम था 'एमएसजी' या मोनो सोडियम ग्लूटामेट। वैज्ञानिक बोला, "आपको बस इतना करना है कि जो भी पकाएं, उसमें इसकी ज़रा सी मात्रा मिला दें। इसके नतीजे शाम तक आपके सामने होंगे।"

वह दिन तो दोनों भाईयों के लिए बड़ा ही शुभ रहा। दोपहर होते-होते सारा खाना खत्म हो गया। रेस्त्रां में खाना खाने वाले लोग बार-बार वही व्यंजन स्वाद से खा रहे थे। उस दिन के बाद से उन भाईयों की मुसीबत तो दूर हो गई पर उन्होंने सारी दुनिया के सामने ऐसी परिस्थितियां पैदा कर दीं, जिनसे हम चाह कर भी निकल नहीं सकते। अब मैं आपको बताता हूं कि उस एमएसजी ने कमाल कैसे दिखाया।

दरअसल, दिमाग हमारे पेट को संदेश देता है कि उसे भूख लगी है तब पेट को भूख का एहसास होता है और हमें लगता है कि कुछ खा लें। जब हम भरपेट खा लेते हैं तो दिमाग से पेट को संदेश मिलता है कि खाना बंद करो, पेट भर गया। हम इसे समझने के लिए ट्रैफिक सिग्नल का उदाहरण लेते हैं। मान लेते हैं कि ट्रैफिक सिग्नल में दो सिग्नल हैं- लाल और हरा! अब कल्पना करें कि जब हमारे शरीर में ऊर्जा की कमी होने लगती है, तो उस समय हरा सिग्नल चालू हो जाता है और दिमाग में ग्रेहलिन नामक हारमोन बनने लगता है, जो पेट को संदेश देता है कि कुछ खाओ। हम भूख महसूस करके कुछ खाने लगते हैं और जैसे ही भरपेट खा लेते हैं तो फिर से मस्तिष्क एक लाल सिग्नल देता है यानी खाना बंद

करो। तुमने पर्याप्त मात्रा में खा लिया है। तब दिमाग में लैप्टिन नामक हारमोन बनता है। जब हम एमएसजी युक्त कोई भी खाद्यपदार्थ खाते हैं तो जीभ पर स्वाद या नाक में उसकी गंध आते ही दिमाग में हरा सिग्नल जल जाता है। ग्रेहलिन हारमोन बनने लगता है। लाल सिग्नल बंद ही रहता है यानी पेट को भरने का एहसास ही नहीं होता। कुछ भी खाने के थोड़ी देर बाद भी और खाने की इच्छा पैदा होती है।

यदि हम इसी एमएसजी का सेवन लगातार कुछ साल तक करते रहें तो लाल सिग्नल हमेशा के लिए खत्म हो जाता है। तभी तो बच्चे दिन भर खाते रहते हैं, फिर भी उनकी भूख नहीं मिटती। कहने का तात्पर्य यह है कि उन्हें भोजन के बाद मिलने वाली संतुष्टि का अनुभव हो ही नहीं पाता।

आजकल बाजार में पाए जाने वाले फास्ट फूड और पैक्ड खाद्यपदार्थ की लोकप्रियता का यही प्रमुख कारण है। बच्चे चिप्स, पिज्ज़ा, बर्गर, फ्रेंच फ्राईज़, कोल्डड्रिंक, नूडल्स व चॉकलेट वगैरह के दीवाने हैं और ऐसे सभी खाद्यपदार्थों में यह एमएसजी नामक रसायन पाया जाता है। यदि आप एक गृहिणी हैं तो आपने अवश्य ही कोशिश की होगी कि अपने बच्चे को बाजार से पिज्ज़ा दिलवाने की बजाय घर में ही बना कर खिलाएं। आश्चर्य की बात यह है कि घर में सारी उपयुक्त सामग्री से बना पिज्ज़ा भी बच्चों को नहीं लुभा पाता और उनका एक ही उत्तर मिलता है, "मम्मी! आपके हाथ के बने पिज्ज़ा में वह स्वाद कहां, जो मैक्डोनाल्ड या अन्य दुकानों के पिज्ज़ा में आता है।"

इसका कारण यह है कि आप घर के बने पिज्ज़ा में एमएसजी नहीं मिलातीं। उसी एक केमिकल के अभाव में पूरा स्वाद नहीं मिलता। यदि मिट्टी में भी मोनो सोडियम ग्लूटामेट मिला कर खिलाया जाए तो यकीनन आप उस मिट्टी के स्वाद के दीवाने हो जाएंगे और उसे बार-बार खाना चाहेंगे। इसे 'झूठा स्वाद' या 'फाल्स टेस्ट' कहते हैं।

जब भी हम मैक्डोनाल्ड, डोमीनोज़ व पिज्जाहट, के सामने से गुज़रते हैं तो वहां एक अलग सी महक आती है और हमारे नाक में वह गंध जाते ही कुछ खाने का मन करने लगता है। दरअसल तब हमारे दिमाग में ग्रेहलिन नामक हारमोन

बनने लगता है और पेट को संदेश आता है कि तुम्हें भूख लगी है, कुछ खा लो।

यानी स्पष्ट है कि एमएसजी के कारण ही मोटापा, हृदय रोग, मधुमेह, मानसिक रोग जैसे कई जीवनशैली जनित रोग पनप रहे हैं।

बहुराष्ट्रीय कंपनियां बड़ी तेजी से अपने स्वाद और सुगंध का यह जाल फैला रही हैं। आज शायद ही कोई ऐसा घर बचा होगा, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इनकी चपेट में न हो! बच्चे स्वास्थ्यवर्द्धक फल व सब्जियां खाने के बजाय कोल्ड ड्रिंक, चिप्स, बर्गर, पिज्ज़ा, नूडल्स आदि से पेट भर लेते हैं और फिर जब भूख नहीं मिटती तो बार-बार वही चीजें खाते हैं। इस तरह यह दुष्चक्र कभी खत्म ही नहीं हो पाता।

इस अध्याय के आरंभ में मैंने आपसे जो प्रश्न पूछा था, अब उसका उत्तर आपको मेरी इस कहानी से मिल गया होगा। यही कारण है कि आज हमारे बच्चों में रोग प्रतिरोधक क्षमता न के बराबर रह गई है। वे बार-बार और जल्दी बीमार पड़ते हैं और बीमार पड़ने पर आसानी से जल्दी ठीक भी नहीं होते। हमारे शरीर में स्वयं को आरोग्य प्रदान करने वाला तंत्र इतना कमज़ोर हो गया है कि वह पूरी क्षमता से कार्य ही नहीं कर पाता। बहुराष्ट्रीय कंपनियां नित नए लुभावने विज्ञापनों की रंग-बिरंगी दुनिया के माध्यम से बच्चों के कोमल मस्तिष्क को अपनी जकड़ में लपेटे हुए हैं। बाजार में मिलते फास्ट फूड पैकेटबंद खाद्यपदार्थों के मोहजाल में फंसे बच्चे घर का बना खाना और ताजे फल-सब्जियां खाने से इंकार कर देते हैं। वे प्यास लगने पर कोल्डड्रिंक पीते हैं और भूख लगने पर चिप्स खाते हैं।

अब आप अपने बच्चों को इस दुष्चक्र से निकालना चाहते हैं या नहीं? यह हम पूरी तरह से आप पर ही छोड़ते हैं।

दूसरी कहानी का शीर्षक है, **'कैनिबॉलिज़्म' (नरभक्षण)**

आपके अनुसार मानवजाति के इतिहास में सबसे बड़ा अपराध क्या है? झूठ बोलना, मक्कारी करना, छल-कपट करना, किसी की हत्या कर देना, चोरी-डकैती करना, गला रेत देना, बलात्कार वगैरह! मैं आपको बताता हूं कि इनसे भी बड़ा एक अपराध है। जब एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को खाने लगता है तो वह दुनिया का सबसे घिनौना और लज्जाजनक अपराध होता है।

कैनिबॉलिज़्म यानी स्वजाति भक्षण। जब कोई जीव अपनी ही जाति के जीवों को खाने लगता है तो इसे स्वजाति भक्षण कहते हैं। उसे अपनी ही जाति के जीव को मार कर खाने में स्वाद आने लगता है।

बेशक इस संसार में कुछ जीव ऐसे हैं जो इस व्यवहार को प्रयोग में लाते हैं। कुछ पशुओं में यह प्रवृत्ति पाई जाती है किंतु वे किसी तरह के स्वाद के लोभ में ऐसा नहीं करते। यह लक्षण दुर्लभ है और केवल उन्हीं पशुओं में पाया जाता है जो अपनी सीमाओं की रक्षा के लिए दूसरे पशुओं को खा जाते हैं या फिर ऐसा उन हालातों में होता है, जहां एक मादा संभोग के दौरान नर का भक्षण कर लेती है, जैसे बिच्छू या रैडबैक मकड़ा वगैरह।

नि:संदेह पशुओं की यह प्रवृत्ति फिर भी स्वीकार्य है क्योंकि वे मनुष्यों की तरह बुद्धिमान नहीं हैं किंतु जब हम नरभक्षण की बात करते हैं तो इसे किसी भी दृष्टि से स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि यह तो मानवता के प्रति एक घोर अपराध है। किसी भी विकसित सभ्यता में ऐसा व्यवहार मान्य नहीं ठहराया जा सकता।

यदि हम मानव इतिहास के पृष्ठों पर नज़र डालें तो कुछ ऐसे उदाहरण मिल जाते हैं जो इस व्यवहार की पुष्टि करते हैं। नरभक्षण का सबसे पहला दर्ज अभिलेख 7 लाख 80 हजार वर्ष पुराना है, जब स्पेन के ग्रान डोलिना में छह व्यक्तियों को इसी आशय से मार दिया गया था। फिर लगभग एक लाख वर्ष पूर्व फ्रांस के मॉला गुईवे में नरभक्षण का एक और उदाहरण पाया गया। लीबियावासी राष्ट्रपति चार्ल्स टेलर पर भी नरभक्षण का आरोप लगा है और अभी उन पर मुकदमा चल रहा है। कार गणराज्य के शासक व तानाशाह जीन बेडल को भी इसी श्रेणी में रखा जा सकता है। वह अपने शत्रुओं को खूंखार जानवरों के आगे फिंकवा देता था ताकि वे उसे अपना शिकार बना सकें।

यदि आपसे कहा जाए कि आपको ऐसे क्रूर व्यक्तियों को दंडित करना है तो आप उन्हें क्या सजा देते? क्या उन्हें आजीवन कारावास देते, फांसी पर लटका देते या फिर बिजली की कुर्सी पर बिठा कर, जला कर राख कर देते!

मेरे हिसाब से तो ऐसे लोगों के लिए ये दंड भी कम हैं। उन्हें तो ऐसे दंड दिए

जाने चाहिए कि उनकी आने वाली पीढ़ियां भी ऐसा घिनौना काम करने से डरें। उन लोगों के लिए ऐसी सजा खोजी जानी चाहिए जो मौत से भी भयंकर और दर्दनाक हो ताकि वे ऐसे अमानवीय कृत्य फिर कभी न दोहराएं।

लेकिन अगर मैं आपसे कहूं कि ऐसे लोग हमारे पड़ोस में भी मौजूद हैं, जो जाने-अनजाने ही सही, लेकिन अपनी ही जाति या मनुष्य के किसी अंश को खा रहे हैं! या दूसरे शब्दों में कहें तो मानव शरीर के किसी अंश को खा रहे हैं... ...!

.....सुन कर चौंक गए न? आपको यह जानने का कौतूहल हो रहा होगा कि आपके पड़ोस में रहने वाले ऐसे लोग कौन हैं? इससे पहले कि मैं ऐसे लोगों की सच्चाई आपके सामने लाऊं, मैं सीनोमैक्स नामक कंपनी का सच आपके सामने लाना चाहूंगा। इसी कंपनी ने हमारे समाज में नरभक्षण की बुनियाद डाली।

सीनोमिक्स की स्थापना प्रमुख जीव-रसायनी लूबर्ट स्ट्राइर ने 1999 में की। मई 2001 में उन्होंने उस पद से त्यागपत्र दे दिया और स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय में प्रोफेसर का पद ले लिया। हालांकि, वे वैज्ञानिक सलाहकार बोर्ड के चेयरमैन बने रहे। सीनोमैक्स एक अमेरिकी जैव-तकनीकी कंपनी है, जो भोजन में स्वाद और गंध बढ़ाने के लिए कृत्रिम फ्लेवर्स बनाती है। यह फ्लेवरिंग एजेंट एचईके-293 कहलाता है। यह गर्भपात किए हुए शिशुओं की किडनी से निकली कोशिकाओं से बनाया जाता है। जब शिशु मां की कोख में इतना पनप जाता है कि उसके शरीर में किडनी विकसित हो चुकी हो और उसके बाद यदि गर्भपात कर दिया जाए तो किडनी से निकली कोशिका का इस्तेमाल ऐसे कई कामों के लिए किया जा सकता है। आप यह भी जान लें कि पूरे संसार में लगभग एक वर्ष में 5 करोड़ से अधिक गर्भपात होते हैं। यह एजेंट प्रोसेस्ड भोजन में मिठास और नमकीन स्वाद देता है ताकि वे यह डींग हांक सकें कि उन्होंने अपने खाद्य पदार्थ में एमएसजी नहीं मिलाया। सुनने में भले ही यह बात असत्य जान पड़े किंतु यह शत-प्रतिशत सत्य है। जो कंपनियां इस फ्लेवरिंग एजेंट का प्रयोग करती हैं- इनमें पेप्सीको, नेस्ले, क्राफ्ट फूड्स, अजीनोमोटो जैसी कंपनियां शामिल हैं।

क्या इस विषय में आपको और अधिक जानकारी देने की आवश्यकता है या जब भी आप ऐसा ही कोई पैकेटबंद खाद्यपदार्थ लेंगे या कोल्ड ड्रिंक पिएंगे तो स्वयं ही सचेत हो जाएंगे कि आपके हाथ में पकड़ी बोतल में क्या मिलाया गया है? या फिर कहीं आप स्वयं भी नरभक्षण की प्रवृत्ति के पोषक तो नहीं.....? निर्णय आपको ही लेना है।

तीसरी कहानी का शीर्षक है, **'खाद्यपदार्थों की राजनीति'**

पिछली दो कहानियों के माध्यम से हमने आपको ऐसे तथ्यों के विषय में जानकारी दी जो मृत्यु से भी भयंकर की श्रेणी में आते हैं क्योंकि इनका भयंकर दुष्प्रभाव मृत्यु के बाद भी बना रहता है। चूंकि इन तथ्यों को निरंतर उपेक्षित किया जा रहा है, नि:संदेह इसका नुकसान हमारी आने वाली पीढ़ियों को भुगतना होगा। आज भी मैं आपको ऐसे ही भयावह तथ्य से मिलवाने जा रहा हूं, जो जाने-अनजाने आप सभी के जीवन में ऐसी गहरी सेंध लगा कर बैठा है कि आप उसे अपने ही जीवन का एक अंग मानने लगे हैं।

उस तथ्य तक जाने के लिए पहले आपको मेरे साथ अतीत की उन गलियों में जाना होगा, जहां धन व सत्ता के लोभियों ने केवल अपने स्वार्थ के लिए मानवजाति के साथ एक घिनौना षड्यंत्र किया। मैंने इसे नाम दिया है, 'खाद्य पदार्थों की राजनीति'।

वर्ष 1972, यूएस राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन को यह चिंता सता रही थी कि कहीं आर्थिक अस्थिरता के चलते उनकी सरकार न गिर जाए! सत्ता का मद होता ही ऐसा है। इसके मद में चूर रहने वालों को संसार में अपने सिवा कुछ दिखाई ही नहीं देता। उस समय यही दशा निक्सन की भी थी। उसने अपनी समस्या का समाधान करने के लिए जापानी वैज्ञानिक योशीयूकी ताकासाकी की सहायता ली और उससे एचएफसीएस बनाने का फार्मूला खरीदा। इसे हम बायोबम की संज्ञा दे सकते हैं।

एचएफसीएस यानी हाई फ्रूक्टोज कार्न सिरप, इस केमिकल को खाने-पीने की जिस भी वस्तु में डाला जाता है, खाने वाले को उसे खाने की लत हो जाती है। इसका प्रभाव एमएसजी से भी अधिक व्यापक होता है। बहुराष्ट्रीय कंपनियां

अपने खाद्य व पेय पदार्थों में इन्हीं रसायनों को मिला कर हमें अपने उत्पाद के सेवन की आदत डाल चुकी हैं। चूंकि कुछ समय से लोग एमएसजी जैसे केमिकल के बारे में जागरुक हो रहे हैं इसलिए वे अपने पैकेट पर साफ शब्दों में लिखवाती हैं, 'इसमें एमएसजी नहीं है'... किंतु उनके खाद्यपदार्थ में एचएफसीएस मिलाया गया होता है।

एचएफसीएस का प्रभाव काफी हद तक शराब जैसा होता है। जिस तरह शराब पीने वाला उसके नशे में मस्त रहता है और उसे बार-बार पीना चाहता है, उसी तरह एचएफसीएस युक्त खाद्य या पेय पदार्थ पीने वाला भी उसके स्वाद का इतना आदी हो जाता है कि उसे खाए बिना रह ही नहीं पाता। शराब का आपके मन और शरीर पर जो भी असर होता है, वही सारा प्रभाव इस केमिकल का भी है।

जिस तरह शराब पीने से हाइपरटेंशन, दिल के रोग, पैंक्रियाज़ पर बुरा असर, कुपोषण, मोटापा, लिवर का नष्ट होना आदि कुप्रभाव सामने आते हैं, उसी तरह इस बायोबम का सेवन करने वाले भी इन रोगों की चपेट में आ जाते हैं।

अब मैं आपको बताना चाहता हूं कि एचएफसीएस को किन खाद्यपदार्थों में मिलाया जाता है। यह जानकारी निश्चित रूप से आपको हैरत में डाल देगी क्योंकि ये सभी वस्तुएं आपके लिए नई नहीं हैं। ये वे सभी खाद्य व पेय पदार्थ हैं, जिन्हें आप स्वयं खाते हैं व अपने बच्चों को भी बहुत ही प्यार से परोसते हैं। ऐसे खाद्यपदार्थों की सूची निम्नलिखित है:-

जैली

पेस्ट्री

कैंडी

बिस्किट

फ्रूटी

ब्रेड

चॉकलेट

जूस

सैरेलेक

जैम

बर्गर

नूडल्स वगैरह।

बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने आपको इन खाद्यपदार्थों की इतनी लत डाल दी है कि आप चाह कर भी इन्हें अपनी जीवनशैली से अलग नहीं कर पा रहे। प्राकृतिक रूप से प्राप्त खाद्य पदार्थों को हमने अपने जीवन से परे धकेल कर इन सब वस्तुओं को अपना लिया है। दुर्भाग्य की बात यह भी है कि हमने इन्हें अपने स्टेटस सिंबल से जोड़ दिया है। यदि आप ऐसी वस्तुओं का सेवन नहीं करते तो समाज में आपको हेय दृष्टि से देखा जाता है और पिछड़ा हुआ माना जाता है।

कारण चाहे जो भी हो, ये सभी वस्तुएं हमारे घरों में बेहद चाव से खाई जाती हैं। अब आपको यह भी जान लेना चाहिए कि एचएफसीएस युक्त वस्तुएं खाने से क्या नुकसान हो सकता है? यदि आप लगातार ऐसा ही फास्ट फूड और पैक्ड फूड अपने बच्चों को खिलाएंगे व स्वयं खाएंगे तो शरीर में मिनरल व विटामिन की कमी हो जाएगी। इनका शिकार व्यक्ति हमेशा बीमार व थका-थका सा रहता है, उसे असमय मोटापा घेर लेता है। नींद न आने की बीमारी हो जाती है या फिर नींद आनी ही बंद हो जाती है। किसी भी काम में मन नहीं रमता। एकाग्रता क्षमता कमजोर हो जाती है। फास्ट फूड और पैक्ड फूड की जकड़ में फंसे बच्चों को इनके दुष्प्रभाव अधिक मात्रा में झेलने पड़ते हैं। जिस समय उनके शरीर को पूरी वृद्धि के लिए पोषक पदार्थों की आवश्यकता होती है, उस समय वे फास्ट फूड से अपना पेट भरते हैं। नतीजा, बाहर से मोटा पर अंदर से खोखला शरीर। उस पर रोग प्रतिरोधक क्षमता में कमी! ऐसे बच्चे पढ़ाई में भी मन नहीं रमा पाते।

यह सब प्रभाव तो आप स्वयं अपने घरों में भी देख रहे होंगे किंतु मैं यहां जिस प्रभाव की बात करने जा रहा हूं, वह मृत्यु के बाद भी बना रहेगा अर्थात हमारी मृत्यु के बाद हमारी आने वाली पीढ़ियों को भी हमारी इन लापरवाहियों के

परिणाम भुगतने होंगे। यही लक्षण हमारे नवजात शिशुओं में भी जन्म से ही होंगे। ये ऐसे लक्षण होंगे, जिनके लिए हमारे पास लाखों रुपये खर्च करके भी कोई चिकित्सा नहीं होगी।

इन लक्षणों से ग्रस्त बच्चे शारीरिक व मानसिक विकलांगताओं के साथ जन्म लेंगे। जिस प्रकार एटम बम के असर को हीरोशिमा और नागासाकी की आगामी कई पीढ़ियों ने झेला और अब भी झेल रही हैं, उसी तरह बायोबम भी आपकी आने वाली पीढ़ियों को अपनी चपेट में लेने के लिए पूरी तरह से कमर कसे बैठा है। अब आप स्वयं ही तय कर लें कि रंग-बिरंगे पैकटों में छिपी मौत को कब तक अपने घरों की रौनक बनाना चाहेंगे। कहीं न कहीं से तो शुरुआत करनी ही होगी। इन सभी वस्तुओं से परे जा कर स्वयं को प्रकृति के समीप लाना ही होगा। अब आप यह करना चाहेंगे या नहीं, यह निर्णय हम आप पर ही छोड़ते हैं।

''जो व्यक्ति दवाइयां लेता है, उसे दो बार ठीक होना पड़ता है, एक बीमारी के असर से और दूसरा दवाई के असर से।''

– *विलियम ऑस्लर*

अध्याय-8

कोख से कब्र तक (भाग-3)

पिछले लेखों में आपने ऐसे तथ्यों को जाना, जो मृत्यु से भी भयंकर हैं यानी वे आपकी मृत्यु के बाद भी पीछा नहीं छोड़ेंगे। कोई भी व्यक्ति जिसने उन्हें नहीं पढ़ा है, वह सहज ही विचार कर सकता है कि हमारी मृत्यु के बाद चाहे जो भी होता रहे, हमें उससे क्या अंतर पड़ेगा किंतु उसे भी यह जानना आवश्यक है कि ये दुष्प्रभाव हमारी मौत के बाद हमारी आने वाली पीढ़ियों के लिए भी हानिकारक सिद्ध होंगे। हमारे बच्चे जन्म से ही ऐसे रोगों से ग्रस्त होंगे, जिनकी चिकित्सा संभवत: अभी मनुष्य के वश में नहीं है। ऐसा आने वाले समय में होगा लेकिन इसके प्रभाव अभी से दिखने लगे हैं।

प्राय: हमें अपने आसपास के लोगों से यह सुनने को मिल जाता है कि कैसे कोई शिशु जन्म से ही शारीरिक और मानसिक विकलांगता के साथ जन्मा है। उस समय हम केवल इतना सा ही सोच कर आश्चर्य कर लेते हैं कि भला यह सब क्यों होने लगा है? हम इस बात की गहराई में जाने की चेष्टा तक नहीं करते क्योंकि वह सब हमारे साथ नहीं घट रहा होता है। यह मुनष्य का स्वभाव है कि वह अपने ऊपर बीती घटना पर ही गंभीरता से विचार करता है। दूसरों की पीड़ा उसके लिए दुख व कौतूहल का विषय भले ही हो, वह उसके समाधान के लिए कदम नहीं उठाता। इससे पहले कि मौत की यह भयंकर दस्तक आपके दरवाजे पर भी सुनाई देने लगे, आपको संभलना होगा।

आइए, अब हम जानते हैं कि अपने स्वास्थ्य के लिए बेहतर मान कर आप जिन विटामिन की गोलियों को सुबह नाश्ते में ले रहे हैं, वे आपके और आपकी आने वाली पीढ़ियों की सेहत के साथ कैसे खिलवाड़ कर रही हैं!

जब भी हमारे शरीर में किसी विटामिन या खनिज लवण की कमी होती है, हम डॉक्टर की सलाह से उसकी पूर्ति के लिए कोई विटामिन की गोली लेने लगते हैं या सेहत को बनाए रखने के लिए हेल्थ सप्लीमेंट पाउडर अपने भोजन में शामिल कर लेते हैं।

हमारे शरीर में ईश्वर ने विटामिन व मिनरल्स का एक बहुत ही बेहतरीन संतुलन बनाया है। जैसे ही हम किसी विटामिन की कमी को पूरा करने के लिए उसके लिए गोली लेते हैं तो वह संतुलन पल भर में ही नष्ट हो जाता है।

मैं आपको एक उदाहरण से यह समझाने की चेष्टा करता हूं।

जब कोई रोगी विटामिन सी की कमी को पूरा करने के लिए विटामिन सी की दवा लेना शुरू करता है और इस क्रम में जैसे ही हमारे शरीर में विटामिन सी की मात्रा आवश्यकता से अधिक होती है, शरीर में कॉपर के अवशोषण पर सीधा असर पड़ता है। कॉपर की कमी का सीधा प्रभाव आयरन की विषाक्तता पर पड़ता है और इसका दुष्प्रभाव विटामिन बी 1 , बी 2 , बी 6 व अन्य कई खनिज लवणों को सहना पड़ता है। तो देखा आपने, केवल विटामिन सी की पूर्ति के लिए ली गई गोली ने पूरे शरीर में विटामिन व मिनरल्स के संतुलन को हिला कर रख दिया? सबसे मजे की बात तो यह है कि आप शरीर के भीतर चल रहे इन परिवर्तनों को जान भी नहीं पाते और आराम से विटामिन सी की गोली लेते रहते हैं और जब तक हम अपने शरीर में हो रहे इस परिवर्तन को किसी तरह से जान पाते हैं, तब तक तो बहुत देर हो चुकी होती है।

प्रकृति के पास हमारी हर समस्या का हल मौजूद है। उसने फल व सब्जियों में विटामिन व खनिज लवणों का ऐसा मिश्रण दिया है जो पूरी तरह से संतुलित है। कोई भी फल या सब्जी खाने से हमें संतुलित रूप में विटामिन व खनिज लवण मिल जाते हैं। अत: किसी भी प्रकार के दुष्प्रभाव का प्रश्न ही नहीं उठता।

अब आप एक और उदाहरण लें। यदि हम तेल, मैदा या रिफाइंड शुगर जैसी वस्तुओं का सेवन आवश्यकता से अधिक करते हैं तो क्या होता है? रिफाइंड शुगर के बनाने की प्रक्रिया में क्रोमियम, मैगनीज, कोबाल्ट, जिंक व मैग्नीशियम जैसे तत्वों की कमी हो जाती है। जब हम तेल, मैदा आदि का सेवन करते हैं तो शरीर को अपने साधनों से इन तत्वों की पूर्ति करनी पड़ती है। यही 'यूनिवर्सल लॉ ऑफ रीबैलेंसिंग' कहलाता है।

अब मैं आपको जर्नल ऑफ मेडिकल एसोसिशन (2000) द्वारा दिए गए एक वक्तव्य के विषय में बताना चाहता हूं। उसमें कहा गया था– 'हेल्थ सप्लीमेंट लेने से मृत्यु का खतरा 50 प्रतिशत अधिक हो जाता है।'

वैज्ञानिक निरंतर अपने शोधों के आधार पर हमें चेतावनियां देते रहते हैं किंतु हम उनकी बात एक कान से सुन कर दूसरे कान से निकालने में ही विश्वास करते हैं। इसी प्रकार यू के सरकार ने 2003 में बीबीसी न्यूज के माध्यम से कहा था- 'हेल्थ फूड, विटामिन सप्लीमेंट व पोषण देने वाले उत्पाद स्वास्थ्य के लिए बिल्कुल व्यर्थ व हानिकारक हैं।'

इस तथ्य को पूरी तरह से वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा जांचने के बाद ही तो यह बात कही गई होगी लेकिन हम सब इनकी परवाह तक नहीं करते।

मैं आपको एक सूची के माध्यम से दिखाना चाहता हूं कि विटामिन की पूर्ति के लिए प्राकृतिक साधन अपनाने व उसके लिए कोई पूरक लेने से क्या अंतर पड़ता है।

विटामिन	**प्राकृतिक साधन**	**सप्लीमेंट**
बीटा कैरोटिन	रोगप्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि, रतौंधी में लाभ, नेत्रों के लिए लाभदायक,	फेफड़ों का कैंसर
विटामिन ई	थकान व त्वचा की एलर्जी से बचाव।	हैमरॉजिक स्ट्रोक, फेफड़ों का कैंसर
विटामिन सी	रोगप्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि, फेफड़ों के लिए लाभदायक सर्दी-खांसी से बचाव	किडनी में पथरी, आस्टियोआर्थराइटिस और किडनी को नुकसान।

अब आपको न्यट्रालाइट के पीछे छिपे सच को भी जान लेना चाहिए। ये कंपनियां बड़े-बड़े दावे करती हैं कि आपको कुछ भी खाने की आवश्यकता नहीं है। यदि सुबह-शाम इनकी बनाई गोलियां खा लें तो आपके शरीर में सभी पोषक तत्वों की कमी पूरी हो जाएगी। जबकि ऐसा करना स्वास्थ्य के लिए दुगना नुकसानदायक होता है।

फूड व ड्रग्स एडमिनिस्ट्रेशन ने इसके लिए विशेष रूप से कहा है-

'न्यूट्रालाइट किसी भी प्रकार के अप्रमाणिक दावे न करे।'

अब आप स्वयं ही सोचें कि शरीर को प्राकृतिक रूप से किसी भी प्रकार के पोषक तत्व दिए बिना क्या स्वस्थ रखा जा सकता है? क्या इन चीजों के सेवन से होने वाली हानियों की ओर से नजरें फेरी जा सकती हैं? क्या ये मुद्दे इतने छोटे व सारहीन हैं कि इन्हें केवल एक बार पढ़ कर दरकिनार कर देना ही काफी होगा? यह निर्णय तो आपको ही लेना है।

चलिए अब वापस लौटते हैं अप्पू और पप्पू की कहानी पर और जानते हैं कि उनकी जिंदगी के अगले पड़ाव पर क्या हुआ?

पप्पू को फास्ट फूड्स के सेवन ने कार्डियोवास्कुलर रोग से ग्रस्त कर दिया था।

अब हम कार्डियोवास्कुलर रोग के उपचार का सच जानेंगे। ब्रिटिश मेडिकल जर्नल ऑब्जरवेशनल, 2010 की एक स्टडी के अनुसार स्टैटिन का उपचार ले रहे दो मिलियन लोगों में लिवर डिस्फंक्शन, किडनी फेल होने और कैटेरेक्ट होने की बहुत ज्यादा संभावना है। उसी प्रकार डब्ल्यूएचओ के 20 वर्षीय अध्ययन के अनुसार कोलेस्ट्रॉल को कम करने वाली दवाइयां मृत्यु का खतरा 47 प्रतिशत तक बढ़ा देती हैं। एफडीए स्टैटिन प्रयोग करने वालों को स्मरणशक्ति में कमी और डायबिटीज से सावधान करती है यानी कि मतलब साफ है। कॉर्डियोवास्कुलर रोग या कोलेस्ट्रॉल या बीपी के लिए दवाइयां लेना कुछ और बीमारियों को बुलाने के बराबर है। डायबिटीज ड्रग एक्टोस, ब्लैडर कैंसर के खतरे को 40 प्रतिशत तक बढ़ा देता है। यह दवाई फ्रांस और जर्मनी सहित कई देशों में प्रतिबंधित कर दी गई है किंतु भारत में अब भी यह पायोग्लिट, पायोग्लर और पायुज के नाम से बाजार में उपलब्ध है और प्रयोग की जा रही हैं। मतलब साफ है कि इस एक बीमारी का उपचार हमारे शरीर में अन्य बीमारियों को बुलावा देने का काम कर रहा है। यदि आप कोलेस्ट्रॉल की दवाई लंबे समय तक लेते हैं तो डायबिटीज हो सकता है और अगर आप कैंसर की दवाई लंबे समय तक लेते हैं तो कैंसर हो सकता है। कैंसर के आधुनिक उपचार का तरीका बड़ा ही शर्मनाक है। गौर कीजिए इस रिपोर्ट पर:

अमेरिकन इंस्टिट्यूट ऑफ कैंसर रिसर्च के वरिष्ठ वैज्ञानिक सलाहकार टी कॉलिन से पूछा गया कि अगर कभी आपको या आपके परिवार के किसी

सदस्य को कैंसर हो जाए तो आप क्या करेंगे? इस सवाल का उन्होंने क्या जवाब दिया–

''अगर मैं या मेरे घर का कोई भी सदस्य कैंसर से पीड़ित हो जाता है तो मैं किसी भी तरह के प्रचलित उपचार को नहीं अपनाऊंगा बल्कि उपचार के लिए अच्छी गुणवत्ता वाले फलों सहित पौधों पर आधारित डाइट तैयार करूंगा। आहार के साथ भरपूर पानी, व्यायाम और सूरज की रोशनी को भी शामिल करूंगा। मैं प्रकृति को उसका काम उसके अपने तरीके से करने दूंगा।''

– टी कॉलिन कैंपबेल, सीनियर साइंस एडवाइजर,

अमेरिकन इंस्टिट्यूट ऑफ कैंसर रिसर्च

टी कॉलिन कैंपबेल का जवाब सुनकर तो यही पता चलता है कि शायद वे जानते है कि कीमो की शुरुआत कैसे हुई थी। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान 60 लाख से ज्यादा लोगों को मारने के लिए हिटलर ने मस्टर्ड गैस का प्रयोग किया था। इसके बाद बड़ी दवा कंपनियों द्वारा डिजाइन किए गए कीमोथेरेपी एंपायर सहित नाजी वैज्ञानिकों, अमेरिकी राजनीतिज्ञों सहित कई बुद्धिजीवियों को मानव शरीर पर मस्टर्ड गैस के दुष्प्रभाव का अर्थ समझ आ गया। दरअसल यह उन अति आवश्यक श्वेत रक्त कणिकाओं को खत्म कर देती है जो बीमारियों से हमारे शरीर को बचाती हैं। अब देखिए कैंसर के कुछ और सत्य:

डब्ल्यूएचओ कहता है कि विश्व में होने वाले 3 प्रतिशत कैंसर का कारण डायग्नोस्टिक एक्स–रे है। यानी कि एक्स–रे करवाना आपके लिए खतरनाक है। संभवत: कैंसर, मेमोग्राफी वगैरह का कारण एक्स–रे हो सकता है। इसी तरह मेमोग्राफी यानी कि ब्रेस्ट कैंसर स्क्रीनिंग ब्रेस्ट कैंसर के खतरे को बढ़ा देती है। हावर्ड मेडिकल स्कूल कहता है कि तीन बार बायोप्सी कराने से 62 प्रतिशत तक कैंसर का खतरा बढ़ जाता है।

कैंसर यूं ही किसी को अपने आप नहीं हो जाता बल्कि प्राय: अस्पताल के आधुनिक डायग्नोस्टिक टेस्ट्स, फास्ट फूड और पैक्ड फूड में छिपे हुए रसायनों के माध्यम से शरीर में कैंसर को एक षड्यंत्र के माध्यम से प्रवेश कराया जाता है क्योंकि आपके बीमार पड़ने से कुछ लोगों को बेहद लाभ है।

हार्ट सर्जरी के मामले में भी कुछ ऐसा ही है।

न्यूट्रीशंस पर दुनिया की सबसे बड़ी स्टडी 'चाइना स्टडी' है। इसके मुताबिक बायपास सर्जरी कराने के तीन साल के अंदर मरीज के पुनः छाती दर्द से पीड़ित होने की संभावना एक-तिहाई तक होती है। जिन लोगों ने कभी भी सर्जरी नहीं करवाई है, उनके मुकाबले दिल का ऑप्रेशन करवा चुके लोगों में भी पुनः हार्टअटैक की संभावना को नकारा नहीं जा सकता। बाईपास सर्जरी व एंजियोप्लास्टी दिल के रोगों का स्थायी उपचार नहीं हैं। आप इन्हें करवाने के बाद भी पूरी तरह से निश्चिंत नहीं हो सकते क्योंकि अब भी दिल के रोग होने की संभावना का प्रतिशत उतना ही है जितना कि पहले था।

आप सोच रहे होंगे कि हमारे प्यारे पप्पू का क्या हुआ? उसे दिल की बीमारी ने घेर लिया था। वह चाहे-अनचाहे दवा और सर्जरी के माध्यम से इलाज का दम भरने वाले डॉक्टरों के चंगुल में ऐसा फंसा कि कभी छूट ही नहीं पाया और उधर हमारा अप्पू हमेशा प्रकृति के साथ कदमताल करते हुए बड़े ही आनंद से जंगल में मंगल करता रहा।

''दवाइयों के हजारों नुस्खे पाना तो सरल है
किंतु कोई एक चिकित्सा पाना कठिन है।''

- एक चीनी कहावत

अध्याय 9

बीमारी का अर्थशास्त्र

पिछले अध्याय में आपने देखा कि हम सब किस तरह कैंसर व दिल के रोगों जैसी घातक बीमारियों की संभावनाओं के बीच बैठे हैं। कोई नहीं जानता कि वह किस रूप में किस तरह की बीमारी को न्यौता दे रहा है। जो भी बीमारियों की चपेट में आ जाता है वह इंसान कहीं न कहीं से पैसे का प्रबंध कर डॉक्टर व अस्पतालों के दरवाजे पर पहुंचता है पर उसे यह पता नहीं होता कि वह अपने जीवन की सारी जमा-पूंजी लगा कर भी अपने लिए मौत ही खरीद रहा है। होता यही है कि वह एक बीमारी का इलाज करवाने जाता है और बदले में एक और रोग का उपहार ले आता है। मानो 'एक खरीदें और एक निःशुल्क पाएं' की कोई योजना चल रही हो।

भले ही उसके पास अपना परिवार चलाने के लिए पर्याप्त धन न हो किंतु महंगी दवाईयाों और डाक्टरों की फीसों का इंतज़ाम तो करना ही पड़ता है। बीमारियों के अर्थशास्त्र को समझने के लिए डब्ल्यूएचओ की एक रिपोर्ट पर नज़र डालनी होगी। डब्ल्यूएचओ की रिपोर्ट कहती है कि एक अनुमान के अनुसार अगले 10 वर्षों में जीवनशैली से जुड़ी बीमारियों की वजह से भारत को 120 लाख करोड़ रुपये का नुकसान हो सकता है।

विश्व बैंक कहता है कि भारत में हर साल लगभग 8 लाख लोग जीवनशैली से संबंधित बीमारियों की वजह से गरीबी रेखा के नीचे आ जाते हैं। कम आय वाले इस समूह की एक तिहाई आय उपचार में चली जाती है। जबकि नेशनल हेल्थ अकाउंट कहता है कि हर चार में से एक परिवार इन उपचारों के लिए या तो अपनी कीमती चीजें बेच देते हैं या फिर स्वास्थ्य व देखभाल के लिए कर्ज के तौर पर पैसे लेने को मजबूर हो जाते हैं।

अब सवाल यह है कि इतना सारा पैसा जाता कहां है? इस तथ्य को समझने के लिए आप इस रिकॉर्ड को देखें। फॉर्च्यून मैगजीन के अनुसार, हेल्थ केयर विश्व

की नंबर वन तेजी से बढ़ने वाली कंपनी है। इसे सबसे तेजी से बढ़ने वाली दस में से चार कंपनियों के तौर पर माना जा रहा है। असल में यह बिजनेस ऑफ हेल्थ नहीं, बल्कि बिजनेस ऑफ डिज़ीज है।

इस उदाहरण पर गौर कीजिए–

विश्व की सबसे अधिक कीमो दवाएं बनाने वाली कंपनी है, ब्रिटिश मायर्स स्क्विब और सबसे बड़ी तंबाकू बेचने वाली कंपनी है, फिलिप मॉरिस। अब गौर कीजिए कि इन दोनों कंपनियों में क्या समानता है? एक कंपनी कैंसर के उपचार की दवाएं बनाती है तो दूसरी कैंसर को जन्म देने वाली कंपनी है। इसके अलावा इन दोनों कंपनियों में एक नाम भी एक समान है–रिचर्ड एल गेल्ब । वे पहली कंपनी के चेयरमैन हैं और दूसरी कंपनी में भी इनके शेयर लगे हुए हैं।

अब एक और खास बात। बात 1965 की है। कैलिफोर्निया मेडिकल एसोसिएशन के दो डॉक्टर– डॉ. मैकडोनाल्ड और डॉ. गारलैंड ने वैज्ञानिक तौर पर यह साबित कर दिया कि एक दिन में 24 सिगरेट्स पीने से फेफड़ों के कैंसर को दूर रखा जा सकता है और यह भी कहा कि अगर कैंसर से बचना चाहते हैं तो दिन में कम से कम 24 सिगरेट पीनी होंगीं।

उन्होंने खुद को इसका जीता जागता सबूत बताया और कहा कि हम रोज सिगरेट पीते हैं और कई बार पीते हैं। इसके बावजूद हम स्वस्थ हैं। हमें कैंसर नहीं है परंतु कुदरत के खेल निराले हैं। वह सबका हिसाब चुकता कर देती है। आपको जानकर शायद आश्चर्य हो कि डॉ. मैकडोनाल्ड की मौत जलती सिगरेट से घर में आग लग जाने से हुई और इस घटना के कुछ साल बाद डॉ. गारलैंड की मृत्यु फेफड़ों के कैंसर से हुई। बस उनकी मौत के साथ ही '24 सिगरेट पीजिए और लंग कैंसर दूर कीजिए' का उनका नारा भी खत्म हो गया। 1940 में एफडीए द्वारा मंजूरशुदा विज्ञापनों पर गौर करें। इनसे साफ जाहिर है कि धूम्रपान पाचन के लिए लाभदायक है। एक अन्य विज्ञापन में अच्छे डॉक्टर को धूम्रपान से जोड़ा गया है। यही नहीं, एक विज्ञापन में तो अच्छी मां को धूम्रपान से जोड़ा गया है। इसका क्या मतलब है? सब साफ है कि चीजें चाहे गंदी ही क्यों न हों, पहले उन्हें अच्छी बताकर लोगों की जिंदगी में उसकी जगह

बना दो और फिर जब जी चाहे उसके नुकसान की चेतावनी डाल दो, क्या फर्क पड़ता है! तब तक तो उसे उस चीज की लत लग ही जाती है न!

बहरहाल दवाएं, फास्ट फूड्स या तंबाकू बेचने वाली कंपनियों के षड्यंत्र का नतीजा यह है कि आज विकसित और विकासशील देशों में दस में से आठ मौतें जीवनशैली संबंधी बीमारियों, जैसे- कैंसर, डायबिटीज वगैरह के कारण ही हो रही हैं जो पूरी तरह से मानव निर्मित हैं। डब्ल्यूएचओ के अनुसार, 2018 तक चार में से हर एक पुरुष प्रोस्टेट कैंसर और हर पांच में से एक महिला ब्रेस्ट कैंसर से पीड़ित होगी।

नेशनल कमीशन ऑफ माइक्रो इकोनॉमिक्स एंड हेल्थ के अनुसार, 2015 तक भारत के छह करोड़ से अधिक लोगों पर कार्डियोवास्कुलर डिज़ीज थोप दिए जाऐंगे व 2015 तक 4.60 करोड़ लोगों के मधुमेह पीड़ित हो जाने की संभावना है।

गौरतलब है कि यूएन के ह्यूमन डेवलपमेंट इंडेक्स यानी मानव की मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य स्थिति की रैंकिंग पर 177 देशों में से भारत 126वें नंबर पर आता है यानी मामला बहुत ज़्यादा गंभीर है।

मामले की गंभीरता को देखते हुए, इस उदाहरण पर गौर करें।

7 अगस्त 2011, उत्तर प्रदेश में कॉन्स्टेबल प्रमोशन के लिए 10 कि0मी0 की दौड़ रखी गई जो 90 मिनट में पूरी करनी थी।

आप जानते होंगे कि इंसान के पैदल चलने की गति भी 7.5 कि0मी0 के लगभग होती है। इसका मतलब यह है कि अगर आप पैदल भी चलें, तब भी यह दौड़ 90 मिनट में पूरी कर सकते हैं। लेकिन इस प्रतियोगी दौड़ का नतीजा चौंकाने वाला था। हजार से भी ज्यादा लोगों ने इसमें भाग लिया जिनमें से 100 से भी ज्यादा लोग बेहोश हो गए। वहीं इस दौड़ के दौरान पांच कॉन्स्टेबलों की मौत हो गई यानी उनकी सेहत इतनी खराब थी उनके लिए चलना भी जानलेवा साबित हुआ। कुल 40 कॉन्स्टेबल प्रतियोगी ही दौड़ पूरी कर पाए।

यहां मैं एक और उदाहरण देना चाहूंगा। एक और कॉन्स्टेबल अभिजीत बुरवा मूल रूप से असम के हैं उन्होंने 31 जनवरी 2012 में 156.2 कि0मी0 की दूरी

नंगे पांव बिना रुके 24 घंटे में तय कर ली और गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्ड्स में अपना नाम दर्ज करवाया। जब वे मुझसे मिलने मेरे ऑफिस आए तो मैंने उनसे 24 घंटे बिना रुके चलने का राज जानने की कोशिश की। मुझे उनका उत्तर सुन कर आश्चर्य नहीं हुआ क्योंकि उन्होंने भी वही जवाब दिया जो मुझे उन स्वस्थ व सौ वर्ष से अधिक जीने वाले लोगों से मिला था।

''डॉक्टर सबसे बड़ी गलती यह करते हैं कि दिमाग को ठीक किए बिना ही केवल शरीर को ठीक करने में जुट जाते हैं जबकि दिमाग और शरीर एक ही हैं और उन्हें अलग नहीं मानना चाहिए।''

– *प्लेटो*

अध्याय-10

उपाय की ओर

पिछले अध्यायों में पढ़ी जानकारी के आधार पर अब तो आप जान ही गए होंगे कि अस्पताल से जिंदा वापिस लौटना कोई बच्चों का खेल नहीं है। यदि आपकी किस्मत अच्छी हुई भी तो आप किसी दूसरी बीमारी का तोहफा साथ ले कर आएंगे। वैसे आपको घबराने की कोई आवश्यकता नहीं है। हम आपको ऐसे उपाय बताने जा रहे हैं जिन्हें अपना कर आपको कभी अस्पताल जाने की नौबत ही नहीं आएगी। अब आप जानेंगे कि यदि कोई कैंसर, डायबिटीज या मोटापा जैसी जानलेवा बीमारी से ग्रस्त है तो बिना किसी दवा के मात्र प्रकृति की शक्ति से खुद को कैसे ठीक कर सकता है?

जरा सोचिए, जीवन क्या है? यह जीवन मांइड, बॉडी और पर्यावरण का उचित संतुलन ही तो है और इन तीनों में से एक भी आउट ऑफ बैलेंस यानी संतुलन से परे होता है तो बाकी दोनों भी आउट ऑफ बैलेंस हो जाते हैं। याद रखिए, जब हम बीमार होते हैं तो हमारा माइंड, बॉडी और आसपास के पर्यावरण के साथ इंटरेक्शन यानी जुड़ाव, सब बीमार और अस्त-व्यस्त हो जाता है। जबकि एक आधुनिक डॉक्टर केवल हमारे शरीर की ही मरम्मत करने की कोशिश करता है। वह माइंड, बॉडी और पर्यावरण से हमारे जुड़ाव को समझकर उन तीनों के उपचार के बारे में तो विचार तक नहीं करता।

जबकि ब्रूस लेप्टिन ने इन तीनों के संबंधों को बड़ी ही खूबसूरती से समझाने की कोशिश की है।

मॉलीक्युलर बायोलॉजिस्ट ब्रूस लेप्टिन का कहना है कि जिस प्रकार हर व्यक्ति के मस्तिष्क की एक स्मृति होती है जिसमें वह अपने अनुभवों को संजोता है। ठीक उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति के शरीर की हर कोशिका में अपनी-अपनी स्मृति होती है और कोशिका अपनी कोशिकीय स्मृति की सूचना के अनुसार ही कार्य करती है किंतु आवश्यक बात यह है कि यह कोशिका बाहरी दुनिया के अनुभव के लिए मस्तिष्क में संग्रहित सूचना पर ही निर्भर करती है क्योंकि शरीर की कोशिकाएं बाहरी वातावरण के प्रत्यक्ष संपर्क में नहीं होतीं। आप जो

भी देखते हैं या वास्तविकता में अनुभव करते हैं, अपनी कल्पना में उस पर ही विश्वास करते हैं और वह आपके मस्तिष्क की स्मृति में संग्रहित हो जाता है अंतत: शरीर मस्तिष्क की उस संग्रहित सूचना को ग्रहण करता है। उसी के अनुसार कोशिकाएं कार्य करती हैं। इन तथ्यों का अर्थ यह हुआ कि कोशिकाओं की मेमोरी बदलने से उनके काम करने का तरीका बदल सकता है। कोशिका के कार्य करने के इस तरीके से आप अनुमान लगा पा रहे होंगे कि आपके शरीर में किसी प्रकार की अव्यवस्था या रोग को ठीक करने के लिए सकारात्मक कल्पना एक आवश्यक भूमिका निभा सकती है।

अब आप समझ गए न कि किसी लंबे समय तक चलने वाले रोग को जड़ से उखाड़ने के लिए पहले तो आपको यह मानना होगा कि आप पूरी तरह से स्वस्थ हैं और तभी आपकी यह सोच शरीर की हर कोशिका की मेमोरी में रिकॉर्ड होगी।

कोशिकाओं में हर पल हजारों रसायनिक प्रतिक्रियाएं घटती रहती हैं और उनमें से कई कोशिकाओं की मेमोरी से कंट्रोल की जाती हैं। वहीं दूसरी ओर कोशिकाओं की मेमोरी आपकी बुनियादी सोच पर निर्भर करती है और इस सोच को आपके आसपास का पर्यावरण नियंत्रित करता है।

जरा सोचिए, एक बी पी का मरीज जब दिन में कई बार बीपी की गोली खाता है तो वह वास्तव में अपने सेल्स मेमोरी में रीइनफोर्स करता है कि उसके शरीर में खून का प्रवाह कैसा होना चाहिए? परिणामस्वरूप वह जीवनभर बी पी का मरीज ही रहता है। इस प्रकार अपने मौलिक विचारों के आधार पर वह हर पल अच्छे या बुरे स्वास्थ्य का कारण बनता है।

बॉडी में 50 ट्रिलियन से भी ज्यादा कोशिकाओं की याददाश्त भरी होती है जिससे शरीर की सैंकड़ों बायोकैमिकल प्रक्रियाएं नियंत्रित होती हैं। शरीर की जटिलता का अनुमान इसी बात से लगा सकते हैं कि उन 50 ट्रिलियन कोशिकाओं में से आपके शरीर में 90 प्रतिशत माइक्रोब्स और 10 प्रतिशत शरीर की अपनी कोशिकाएं होती हैं। माइक्रोब्स अपने आप में पूर्ण जीव होते हैं और आपके शरीर में वैसे ही रहते हैं जैसे कि आप इस धरती पर। अगर आप इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप से अपने शरीर के अंदर झांकें तो माइक्रोब्स आपको तैरते हुए दिखाई देंगे।

3.5 बिलियन वर्षों से माइक्रोब्स ने जीवन विकास के सिद्धांत पर अपना प्रभुत्व बनाया हुआ है। धरती पर पाए जाने वाले माइक्रोब्स हर जगह पाए जाते हैं।

ये माइक्रोब्स खुले समुद्र की बर्बादी से लेकर एक दीमक की पाचन तकनीक तक इकोसिस्टम के हर कोने में पाए जाते हैं। इसके बावजूद अब तक विज्ञान इनका केवल एक प्रतिशत ही जान पाया है। माइक्रोब्स के बिना जिंदगी खत्म हो जाएगी या यूं कहें कि उनके बिना जिंदगी शुरू भी नहीं हो सकती।

लगातार नकारात्मक विचार, फास्ट फूड और दवाओं के सेवन से अक्सर सेल्युलर लेवल पर नुकसान होता है जिससे कैंसर जैसी बीमारियों का जन्म होता है। कोशिकाओं के अंदर की दोषयुक्त रसायनिक प्रतिक्रियाओं को दवाओं से ठीक करने की कोशिश ठीक वैसी ही होगी जैसे कि आपके घर में मच्छर हों और आप उसे मारने के लिए मिसाइल या रॉकेट लांचर का इस्तेमाल करें।

क्या आधुनिक दवाएं हानिकारक कैंसरयुक्त कोशिकाओं को मार सकती है? यह सवाल पूछना कुछ ऐसा ही होगा क्या मिसाइल मच्छरों को मार सकती है? हां, बेशक मार सकती है किंतु इसके साथ ही यह आपके घर को भी क्षतिग्रस्त कर देगी।

विज्ञान आज भी यह मानता है कि अभी भी वह मानव शरीर के बारे में एक प्रतिशत से कम जानकारी ही हासिल कर पाया है। ऐसे में मानव शरीर के सेल्यूलर डिस्ऑर्डर को सही करने का कार्य अगर हम प्रकृति पर ही छोड़ दें तो बेहतर होगा।

प्रकृति ने हमें बनाया है, हमारे आसपास की हर चीज़ उसीने बनाई है तो हमारे भीतर या इसके आसपास होने वाली किसी भी अव्यवस्था का इलाज भी इसी के पास है। हमें अपनी चिकित्सा के लिए इसी पर निर्भर रहना चाहिए।

प्रकृति का साथ ही इन बीमारियों से मानव जाति को बचा सकता है। चीनी शोध की इस आश्चर्यजनक रिपोर्ट पर ध्यान दें:

यह कहानी है दो सभ्यताओं की, एक का नाम है हुंजा, जो कि कश्मीर के पास रहते हैं और दूसरी सभ्यता है पीआईएमए इंडियंस, जो कि एरिजोना में जाकर बस गए थे। दोनों ही दुनिया की सबसे स्वस्थ सभ्यताएं मानी जाती थीं। दोनों

का रहन-सहन और खाने-पीने की आदतें भी एक सी ही थीं। दोनों सभ्यताओं में यह देखा गया कि उनके कुल आहार का 90 प्रतिशत हिस्सा प्लांट बेस्ड कच्चा आहार ही था यानी वे पौधों से प्राप्त आहार पर ही निर्भर थे। उनका अधिकतर भोजन फल, कच्चे खाद्य पदार्थ या हल्की उबली सब्जी ही होती थी। नमक न के बराबर और चीनी बिल्कुल कम। इन दोनों सभ्यताओं के लोग प्रायः 100 वर्ष से अधिक जीते थे। उन्हें कभी कैंसर, डायबिटीज, हार्ट डिज़ीज़ जैसी जीवनशैली संबंधी बीमारियां नहीं होती थीं। आज भी हुंजा इंडियन लगभग 100 वर्ष से अधिक जीते हैं। वहां कोई बीमारी नहीं है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि आज भी वहां न कोई केमिस्ट है और न ही कोई हॉस्पिटल।

जबकि पीआईएमए (पीमा) इंडियंस को आज दुनिया की सबसे बीमार सभ्यता का खिताब मिल चुका है। कारण यह है कि आज से कुछ वर्ष पूर्व एरिजोना में बसे पीआईएमए इंडियंस से उनकी जमीन अमेरिकी सरकार ने यह कहकर छीन ली थी कि बदले में उन्हें आजीवन मुफ्त भोजन मिलेगा। उसके बाद सरकार ने भोजन के नाम पर पैक्ड जंक फूड की सप्लाई शुरू कर दी। परिणामस्वरूप लगभग 20 सालों में ही पीआईएमए इंडियंस का हर सदस्य भयंकर रूप से बीमार पड़ने लगा। सभी पीआईएमए इंडियंस डायबिटीज, हाई ब्लड प्रेशर, माइग्रेन, ऑर्थराइटिस, कोलेस्ट्रॉल, कैंसर या मोटापा जैसी बीमारियों से ग्रस्त हो गए।

चीनी शोध के अनुसार, ऐसे में कुछ बीमार लोगों के आहार को फिर से 90 प्रतिशत से अधिक फल, सब्जियों और उबले व्यंजनों से जोड़ दिया गया। साथ ही नमक, चीनी, मैदा, मिल्क पाउडर और रिफाइंड ऑयल भी पूरी तरह से प्रतिबंधित कर दिया गया। फिर पाया गया कि महज डेढ़ से दो साल में ही सब पूरी तरह से स्वस्थ हो गए।

निष्कर्ष यह है कि आप कितनी ही गंभीर बीमारी से पीड़ित क्यों न हों, आपको बस अपनी डाइट का लगभग 90 प्रतिशत कच्चे फलों व सब्जियों से लेना होगा। अगर आप किसी लंबी बीमारी से पीड़ित नहीं हैं और जीवनभर स्वस्थ रहना चाहते हैं तो आपको कम से कम अपनी दिनभर की कुल डाइट का 60 प्रतिशत कच्चे फल और सब्जियों के रूप में लेना होगा। एक चीनी शोध के मुताबिक

शरीर को प्राकृतिक रूप से पौधों के माध्यम से क्लोरोफिल और न्यूट्रीएंट्स की प्रचुर मात्रा दी जाए तो बीमारियों के जड़ से दूर होने की संभावना बढ़ जाती है।

साधारण भाषा में कह सकते हैं कि यदि आप किसी बीमारी से ग्रस्त हैं और एक से डेढ़ साल तक अगर आप 90 प्रतिशत पादप आधारित आहार ग्रहण करते हैं तो आप अपनी खोई हुई सेहत वापस पा सकते हैं। खुशकिस्मती से हुंजा के अलावा दुनिया में छह और सभ्यताएं ऐसी हैं, जहां आज भी बीमारी का कोई नामोनिशान नहीं है और अक्सर वहां के लोग 100 से ज्यादा साल तक जीते हैं। इन सभी सात सभ्यताओं में कुछ समानताएं हैं। इन सभ्यताओं में...

1. कच्चे या उबले भोजन की खपत- 90 से 95 प्रतिशत।

2. चीनी की खपत- न के बराबर

3. नमक की खपत- न के बराबर

4. जंतु आधारित आहार की खपत- एक से पांच प्रतिशत

5. दूध की खपत- बहुत कम

6. प्रोसेस्ड फूड की खपत- बिल्कुल नहीं।

यानी स्पष्ट है कि जिन सभ्यताओं ने एक बार फिर से प्रकृति की ओर लौटने की समझदारी दिखाई या प्रकृति की बनाई चीजें ही इस्तेमाल करने लगे, वे खुद ब खुद स्वस्थ हो गईं। उन्हें न तो कभी किसी भी तरह की बीमारियों ने घेरा और न ही उन्हें किसी भी तरह की दवाओं की जरूरत महसूस हुई।

जर्नल आफॅ द मेडीकल ऐसोसिएशन, 2003 भी चाइना अध्ययन के समर्थन में ही अपनी रिपोर्ट देते हुए कहता है कि कच्चे आहार से कोलेस्ट्रॉल की उतनी ही मात्रा घटाई जा सकती है जितनी आप स्टैटिन के प्रयोग से घटा लेते हैं। यहां एक लाभ यह है कि इस प्रयोग में किसी भी तरह का दुष्प्रभाव नहीं होता।

ठीक इसी प्रकार दि न्यू इंग्लैंड जर्नल ऑफ मेडीसिन, 2001 का कच्चे आहार के बारे में कहना है कि ऑस्टियोपोरोसिस का इलाज करा रहे मरीजों का हिप फैक्चर ठीक नहीं हो सकता । यदि अपने आहार में कच्चे भोजन को शामिल कर दें तो 36 प्रतिशत तक हिप फैक्चर्स में भी आराम मिलने की संभावना रहती है।

अमेरिकी हार्ट एसोसिएशन साइंस एडवाइजरी ने यह निष्कर्ष निकाला है कि कच्चे फल व सब्जियां खाने से लोगों के स्वास्थ्य में जबरदस्त सुधार देखने को मिल सकता है। ठीक इसी प्रकार इसमें यह भी प्रकाशित हुआ है कि कोलेस्ट्रॉल कम करने वाली स्टैटिन की दवाएं लेने वाले मरीजों के मुकाबले वे मरीज ढाई गुना तेजी से स्वस्थ होते हैं, जो आहार में कच्चे खाद्य पदार्थ लेते हैं।

अब सवाल यह है कि अगर अनपका व कच्चा आहार लेने से ही अनेक रोगों से बचा जा सकता है तो यह बात जनता से छिपाई क्यों जाती है? इस सवाल का जवाब देते हुए कोलेस्ट्रॉल गाइडलाइंस पैनल के चेयरमैन डॉ. स्कॉट ग्रूंडी कहते हैं– 'दवा कंपनियां बेहद ताकतवर हैं। इन दवाओं के प्रमोशन के लिए वे काफी ताकत लगा देती हैं। ऐसी कोई इंडस्ट्री नहीं है, जो स्वस्थ भोजन का प्रचार करे।'

दवाओं के इतिहास में पहली बार जर्नल ऑफ अमेरिकन एसोसिएशन, न्यू इंग्लैंड जर्नल ऑफ मेडीसिन व दि लैंसेट एंड दि ऐनल्स ऑफ इंटरनेशनल मेडीसिन ने मिलकर एक संयुक्त वक्तव्य जारी किया है जो न केवल कठोर बल्कि आंखें खोल देने वाला भी है।

'मेडिकल शोधकर्ताओं और कॉरपोरेट प्रायोजक्ताओं के बीच का संबंध बेहद निर्दयी या यूं कहें कि क्रूर है, जो स्पष्ट करता है कि फॉर्मास्यूटिकल कंपनियां चाहती हैं कि लोग लंबे समय तक बीमार रहें और बीमार रहते हुए ही जीवित रहें।'

आजकल फॉर्मास्यूटिकल कंपनियों द्वारा बीमारी की मार्केटिंग इस हद तक बढ़ गई है कि मेडिकल उद्योग से जुड़े लोग यह भूल ही गए हैं कि उनका पहला उद्देश्य लोगों को निरोगी रखना है न कि लाभ के लिए अंधाधुंध दवाइयां और बीमारियों की पहचान संबंधी जांच कराने की सलाह देना।

टाइम पत्रिका के लेख हॉस्पिटल वर्क के अनुसार सिर्फ लाभ कमाने के लिए अक्सर डॉक्टर मरीजों को महंगे डायग्नोस्टिक टेस्ट कराने की सलाह देते हैं। जाइए और अपने आसपास ढूंढने की कोशिश कीजिए। आपको एक भी डॉक्टर का क्लीनिक ऐसा नहीं मिलेगा जहां दवा कंपनियों द्वारा उपहारस्वरूप दिए गए

पेन, डायरियां, नोटपैड, दीवार घड़ियां या दीवारों पर टंगे कैलेंडर नहीं होंगे। इन सभी प्रचार वस्तुओं पर कंपनी अपने द्वारा बनाई गई नई दवाओं की तारीफों के पुल बांधते हुए विज्ञापन देती है।

यह बात बिल्कुल साफ है कि डॉक्टर के अवचेतन मस्तिष्क पर इन सभी वस्तुओं का अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। इस बात की पुष्टि करते हुए अमेरिकन जर्नल ऑफ बायोएथिक्स में यह प्रकाशित हुआ है कि जब कोई किसी से उपहार या किसी भी प्रकार का काम या एहसान लेता है तो खुद को उसका कर्जदार महसूस करने लगता है। इस तरह उसके दिमाग में उसका एहसान या कर्ज चुकाने की बात रहती है, जो सीधे या किसी न किसी तौर पर उपहार लेने वाले के दिमाग पर असर करती है और वह उसके व्यवहार को प्रभावित करता है। ऐसा ही कुछ दवा कंपनियों से उपहारस्वरूप अलग-अलग चीजें लेने वाले डॉक्टरों के दिमाग पर भी पड़ता है और उसी के प्रभाव में आकर वे मरीजों को बेकार की दवाएं लिखने से खुद को रोक नहीं पाते ताकि उससे दवा कंपनियों का फायदा हो और वे उपहारों के उस कर्ज का बोझ उतार पाएं।

मुझे यकीन है कि इतने सारे उदाहरणों के बाद आप इतना तो समझ ही गए होंगे कि किसी भी तरह की बीमारी यहां तक कि बीमारी के बारे में सोचना भी आपको भयभीत कर देता है। ऐसे में आप खुद को डॉक्टर के सुपुर्द कर देते हैं। वे आपको पूरे नियम से हर जांच कराने को कहते हैं ताकि आप जीवन भर बीमार रह सकें और उनके स्थायी ग्राहक बन जाएं। यदि ऐसा नहीं है तो पृथ्वी का एक भी व्यक्ति आज तक आधुनिक दवाओं के बल पर डायबिटीज, हाई ब्लड प्रेशर, कोलेस्ट्रॉल, माइग्रेन या मोटापे जैसी बीमारियों से क्यों नहीं उबर नहीं पाया? जबकि जो तरीका मैंने आपको बताया है, उसके माध्यम से केवल तीन से छह महीने में ही आप इन सारी बीमारियों से पूरी तरह से निरोगी हो जाएंगे।

यदि आप सोच रहे हैं कि वर्षों पुरानी बीमारी केवल प्राकृतिक आहार ग्रहण करने से कैसे ठीक हो सकती है तो इस संशय के समाधान के लिए हमें हजारों लाखों साल पीछे जाना होगा, जब धरती पर जीवन का ही कोई चिन्ह नहीं था। बीबीसी की एक रिपोर्ट में बताया गया है-

4000 मिलियन साल पहले जीवन की शुरुआत हुई, जब धरती अस्तित्व के

आरंभिक चरणों में थी। क्या आपको मालूम है कि तब उसकी सतह कैसी थी? वहां का वातावरण कैसा था? हम आपको इस विषय में बताते हैं। ज्वालामुखी के कारण वहां आसपास ठंडे भाप वाली अमोनिया गैसें फैली थीं। तब पृथ्वी पर जीवन तो था नहीं, न ही पौधे थे। ऐसे में भला फ्री ऑक्सीजन गैस पर्यावरण में कैसे हो सकती थी क्योंकि ऑक्सीजन तो पौधों से मिलती है और जब वहां जीवन ही नहीं था तो भला ऑक्सीजन कहां से होती!

तब सारी गैसें कमजोर स्थिति में थीं और समुद्र में घुली-मिली हुई थीं। पृथ्वी एक उफनते हुए ज्वालामुखी के समान थी। बादलों की गड़गड़ाहट से उत्पन्न बिजली तथा सूरज की पराबैंगनी(अल्ट्रा वॉयलेट) किरणों के कारण इन गैसों में प्रतिक्रियाएं हुई। समुद्री पानी में घुलने तथा इन प्रतिक्रियाओं के पश्चात् जो एक नया कंपाउंड सामने आया,उसे 'अमीनो एसिड' का नाम दिया गया। अमीनो एसिड जीवन का मूल आधार है, जिससे प्रोटीन बनते हैं। यही प्रोटीन मानव शरीर की रचना करते हैं। इस तथ्य की पुष्टि एक अमेरिकी वैज्ञानिक स्टैनले मिले ने भी की।

1950 में अमेरिका के स्टैनले मिले ने पर्यावरण के तत्वों मिथेन, हाइड्रोजन साइनाइड, अमोनिया, पानी, कार्बन ऑक्साइड्स को कृत्रिम रूप से एक फ्लास्क में रखा, जिसे कितने ही दिनों तक उबाला गया। जब उसमें बुलबले होने लगे, तब उसमें इलेक्ट्रिक डिस्चार्ज किया गया लाइटनिंग जैसी वॉयलेंट फोर्सेस को पानी से गुजारा गया जिससे पानी गाढ़ा होता गया। तब जाकर हम एक प्रमाणित या निर्णायक स्थिति पर पहुंच पाए जो यह दिखाता है कि इस तरल में एमिनो एसिड्स मौजूद हैं, जिसे 'बिल्डिंग ब्लॉक ऑफ लाइफ' भी कहते हैं। प्रोटीन से बनने वाला यह तत्व जीवन के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है।

हम जानते हैं कि एमिनो एसिड जीवन का 'बेसिक बिल्डिंग ब्लॉक' है और एमिनो एसिड से प्रोटीन बनता है जो कि जीवन का एक मुख्य आधार है। अब एक व्यावहारिक उदाहरण लेते हैं।

इस वक्त अगर आप अपने हाथ को हिला पा रहे हैं तो हाथों की मांसपेशियों में ऑक्सीजन का संग्रह ही उसका वास्तविक कारण है, जो कि प्रोटीन के कारण बना है। अब हम इस बात को गहराई में जा कर समझने का प्रयत्न करते हैं।

1999 में डॉ. गुंटर ब्लोबेल को उनकी खोज के लिए नोबल पुरस्कार से

सम्मानित किया गया था। उनकी खोज यह थी कि हर प्रोटीन में पहले से ही कोडिंग सिग्नल उपस्थित होते हैं जिनसे यह तय होता है कि वह प्रोटीन किस कोशिका का हिस्सा बनने वाला है और कोशिका के किस भाग से संबंधित होगा।

साधारण भाषा में हम कह सकते हैं कि न्यूट्रीएन्टस इसी सोच में नहीं पड़े रहते कि वे कहां जाएं या वे यूं ही मानव शरीर में नहीं भटकते रहते बल्कि उनके भीतर पहले से ही एड्रेस कोड होता है कि उन्हें किस कोशिका के किस भाग को अपना घर बनाना है। प्रकृति का अपना पोस्टल सिस्टम यही होता है। जिस तरह हर ख़त पर नाम-पता पहले से लिखा होता है और डाकिया उसे केवल सही स्थान पर पहुंचाने का कार्य करता है। उसी प्रकार यहां भी होता है किंतु जरा विचार करें कि यदि किसी कारण से वह पता धुंधला जाए या ठीक से पढ़ा न जाए, पते वाला हिस्सा फट जाए तो भी क्या डाकिया उसे सही पते पर पहुंचा सकेगा? मानव शरीर और भोजन का संबंध भी कुछ ऐसा ही है!

जब किसी भोजन को आवश्यकता से अधिक पका लिया जाता है, डीप फ्रीज़ किया जाता है या माइक्रोवेव में प्रोसेस किया जाता है तो उसके भीतर के कोडिंग सिग्नल्स नष्ट हो जाते हैं और वे शरीर के किसी भी हिस्से में बैठ कर अपनी जगह बना लेते हैं। इस तरह हम अनजाने में ही अपने शरीर में बीमारी की नींव रख देते हैं। 1999 में डॉ0 गुंटर ब्लोबेल की खोज से पहले की सारी प्रगति को एक तरह से व्यर्थ कहा जा सकता है।

हिप्पोक्रेट्स, द फादर ऑफ मॉडर्न मेडीसिन ने सत्य ही कहा था- 'नॉट दि डॉक्टर बट नेचर हील्स', यानी डॉक्टर नहीं बल्कि प्रकृति हमें स्वस्थ रखती है। हमने भी ऐसी ही एक तरकीब को खोज निकाला है। काफी गहरे शोध के बाद हमें पता चला कि प्रकृति ने व्हीट ग्रास यानी गेहूं के ज्वारे को हमारे शरीर के लिए रामबाण दवा की तरह तैयार रखा हुआ है। बस, हमें उसका सही प्रयोग करना जानना होगा।

''आने वाले समय में डॉक्टर कोई दवाई नहीं
देंगे बल्कि अपने मरीजों को शरीर और
खानपान का ध्यान रखने के साथ-साथ बीमारी
के कारण और निवारण के उपाय बताएंगे।''

- थॉमस एल्वा एडिसन

अध्याय-11

सुपर फास्ट हीलिंग

हमें इंसान और प्रकृति के बीच बने उस अनोखे समीकरण को जानना व समझना होगा, जिस पर हमारे जीवन की नींव रखी गई है। हम पहले ही बता चुके हैं कि जब हमारे शरीर में चोट लगती है तो किस प्रकार क्षतिग्रस्त अंग खून बहा कर पहले उस अंग को साफ करता है और फिर खून जम कर उसी जख्म को पूरी तरह से भर देता है। कुछ समय बाद ही वहां नई त्वचा आ जाती है और सब कुछ पहले की भांति सामान्य हो जाता है। शरीर इसी तरह स्वयं को सुपर फास्ट हीलिंग प्रदान करता है।

ठीक इसी प्रकार जब शरीर कोई विषैला पदार्थ खा लेता है तो वह इसे डायरिया या उल्टी के माध्यम से शरीर से निकाल देता है। इसे 'यूनिवर्सल लॉ ऑफ रीबैलेंसिंग' कहते हैं यानी शरीर को पसंद नहीं कि आप उसमें कोई बेकार की चीजें डालें। आपके ऐसा करते ही वह उन्हें शरीर से वापस बाहर निकाल देता है। ऐसे में आवश्यक है कि आप इस बात को समझें कि प्रकृति ही हमारी सभी बीमारियों और परेशानियों को दूर करने की क्षमता रखती है। उसके और निकट जाएं। यकीन मानिए प्रकृति स्वयं ही आपका ध्यान रखेगी।

आपका शरीर मृत्यु को नहीं अपितु जीवन को समर्पित है किंतु पूरी तरह से स्वस्थ होने के लिए अगर आपको डेढ़ से दो वर्ष का समय बहुत अधिक लगता है और अगर आप कुछ ही महीनों में स्वास्थ्य की अमूल्य धरोहर पाना चाहते हैं तो हमें हजारों वर्ष पहले उस युग में जाना होगा जब मनुष्य पशु से मनुष्य रूप में आने के लिए पहले कुछ कदम ले रहा था।

बीबीसी की रिपोर्ट कहती है कि मनुष्य के खानाबदोश जीवन का एक स्थिर व व्यवस्थित कृषक जीवन की ओर अग्रसर होना उसके लिए एक बहुत बड़ा कदम था परंतु यह कैसे संभव हुआ? यह प्रकृति का एक बहुत बड़ा रहस्य है।

आइस एज (हिम युग) के अंत में गेहूं का एक हाइब्रिड मध्यपूर्व में कई जगहों पर प्रकट हुआ, जो बाद में उत्पत्तिमूलक (जैनेटिक पूल) साबित हुआ।

गौरतलब है कि गेहूं की दो अलग-अलग किस्मों ने कृषि सभ्यता की नींव रखी। 4000 ई0 पू0 पूर्व, गेहूं एक समृद्ध पौधा नहीं था। यहां तक पहुंचने के लिए उसे

कई प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ा और तब कहीं जाकर वह एक 'जंगली गेहूं' के रूप में परिवर्तित हुआ, जो कि 6 फुट से भी ऊंचा उगता था। समय के साथ इसमें आकस्मिक आनुवांशिक बदलाव आए और यह एक जंगली गेहूं से उपजाऊ पौधे में परिवर्तित हो गया।

समय के साथ धीरे-धीरे इसमें और बदलाव आते गए। 14 क्रोमोजोम्स वाली जंगली गेहूं की प्रजाति तथा 14 क्रोमोजोम्स वाली घास की एक प्रजाति (जिसे गोट-ग्रास कहते हैं) के सम्मिश्रण से गेहूं की एक नई प्रजाति की रचना हुई। इसे एमर गेहूं का नाम दिया गया। इसमें 28 क्रोमोजोम्स थे। कुछ समय बाद 28 क्रोमोजोम्स वाली एमर गेहूं और 14 क्रोमोजोम्स वाली गोट-ग्रास के स्वत: सम्मिश्रण से गेहूं का जो प्रकार तैयार हुआ, उसे हम आज प्रयोग में ला रहे हैं। यानी आप इसे आज का गेहूं भी कह सकते हैं।

10 हजार ई0 पू0 से 8 हजार ई0 पू0 का समय था मनुष्य पशु से इंसान बना और उसने शेष जीवन से अपनी एक अलग पहचान बनाई। तब मानव ने व्हीट ग्रास (गेहूं के ज्वारे) से दोस्ती की। पहली बार मानव ने सभ्य बस्तियों की नींव रखी। यह कोई संयोग नहीं कि व्हीट ग्रास मानव के लिए अमृत के रूप में साबित हुआ। यही एक पौधा है जिसमें बहुत सारे विटामिन्स, मिनरल्स, फाईबर न्यूट्रीएंट्स और एंटीऑक्सीडेंट्स ठीक उसी अनुपात में है, जो मानव आहार के लिए अति उत्तम हैं।

कहा जाता है कि जब भगवान गणेश ने धरती को अनलासुर के प्रकोप से बचाने के लिए उसे निगल लिया था तो उनके पेट में बहुत जलन होने लगी तब सारे देवी-देवता अपनी पूरी ताकत लगाकर भी भगवान गणेश के पेट की जलन को कम नहीं कर पाए थे। उस वक्त 8800 साधुओं ने मिलकर भगवान गणेश को इसी घास का सेवन कराया, जिससे उनकी पीड़ा समाप्त हो सकी।

व्हीट ग्रास का वर्णन अन्य कई ग्रंथों के साथ-साथ बाइबिल में भी आता है। उसमें इसे किसी भी बीमारी का रामबाण इलाज बताया गया है। लगभग 100 से अधिक शोध कार्यों से यह प्रमाणित हो चुका है कि गेहूं के ज्वारे का जूस (व्हीट ग्रास जूस) शरीर में तीन प्रकार से कार्य करता है।

पहला है, सफाई का काम। व्हीट ग्रास जूस शरीर में वर्षों से जमा विषैले पदार्थों

को बाहर निकालता है और शरीर के आंतरिक अंगों को साफ रखने में मदद करता है।

इसे समझने के लिए हम फास्ट फूड का सेवन करने वाले बच्चे के कोलोन का उदाहरण लेते हैं:

कोलोन में चिपके विषैले पदार्थ न केवल उसे नुकसान पहुंचाते हैं बल्कि उसके खून में मिलकर कई प्रकार की बीमारियों का कारण भी बनते हैं। लगभग 90 प्रतिशत बीमारियों का जन्म कोलोन में विषैले पदार्थों के जमाव से ही होता है। 100 मि0ली0 व्हीट ग्रास जूस का एनिमा लेकर यदि आप कोलोन में 15 मिनट रखते हैं और नियमित रूप से सप्ताह में एक बार सुबह व्हीटग्रास एनिमा लेते हैं तो कई बीमारियां खुद-ब-खुद गायब हो सकती हैं।

व्हीटग्रास जूस का दूसरा अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य है, बॉडी में हारमोनल संतुलन को पुन: संतुलित करना। इसके लिए व्हीटग्रास जूस सबसे पहले विटामिन और मिनरल की कमी को पूरा करता है।

व्हीटग्रास जूस का तीसरा काम है, क्षतिग्रस्त अंगों को दुरूस्त करना और कैंसरयुक्त कोशिकाओं की वृद्धि को कैद करके उन्हें निष्क्रिय करना और फिर नष्ट कर देना।

यदि आप प्रतिदिन 90 प्रतिशत पौधों पर आधारित आहार के साथ 50 से 100 मि0ली0 व्हीटग्रास जूस पीते हैं व सप्ताह में एक बार व्हीटग्रास एनीमा भी लेते हैं तो तीन से छह माह में ही डायबिटीज, आर्थराइटिस, माइग्रेन, कार्डियोवास्कुलर डिज़ीज, कैंसर, मोटापा, पाचन तंत्र की अव्यवस्था, श्वसन तंत्र की अव्यवस्था और रोग प्रतिरोधक क्षमता में कमी जैसे जीवनशैली जनित रोगों से मुक्ति पा सकते हैं। यह पाया गया है कि संसार के सभी मांसाहारी जीव भी बीमार पड़ने पर घास ही खाते हैं जैसे कुत्ता, बिल्ली, बाघ व शेर आदि। प्राय: कहा जाता है कि शेर घास नहीं खाता पर सच तो यह है कि बीमार पड़ने पर शेर भी घास ही खाता है।

अस्पतालों, डॉक्टरों व स्वास्थ्य उद्योगों से जुड़ी इन कड़वी व आश्चर्यजनक सच्चाईयों को जानने के बाद आप इतना तो अवश्य जान ही गए होंगे कि प्रकृति

के पास ही आपके रोगों की चिकित्सा व स्वस्थ रूप से जीवन जीने का राज छिपा है। कुछ वस्तुएं जो मनुष्यों द्वारा निर्मित हैं, वह बड़ी सरलता से उनमें सुधार कर सकता है और उन्हें नए-नए रूपों में संवार सकता है किंतु जो वस्तुएं प्रकृति ने बनाई हैं उनमें सुधार करने के लिए मनुष्य और आधुनिक विज्ञान के पास भी क्षमता नहीं है। केवल प्रकृति ही उनमें सुधार ला सकती है। आप स्वयं प्रकृति का सृजन हैं इसलिए आपके अटूट स्वास्थय व रोगों की चिकित्सा का कार्य प्रकृति ही कर सकती है।

दूसरा तथ्य यह है कि आपको अपनी सोच में सुधार लाना होगा। प्रकृति को अपनी सहचरी बनाते हुए उसके नियमों के अनुसार चलने के लिए कटिबद्ध होना होगा। पैदा होते ही जिस शिशु को डॉक्टरों, दवाईयों व टीकों के हवाले कर दिया जाता हो बेशक उसे अपने-आपको बदलने में थोड़ा समय तो अवश्य लगेगा किंतु कहते हैं न कि जहां चाह वहां राह। यदि आपकी लगन सच्ची होगी तो आप निश्चित रूप से इस सोच में भी बदलाव ला पाएंगे कि हर कार्य की अपनी एक प्रक्रिया और एक निश्चित समय होता है। यदि शरीर में कोई तकलीफ महसूस हो रही है तो प्राकृतिक उपाय अपनाने के साथ थोड़ा धैर्य भी रखें क्योंकि शरीर को सेल्फ हीलिंग की प्रक्रिया को लागू करने में समय लगेगा। आशा करता हूं कि वह दिन दूर नहीं जब आप इस मुहिम में सफल होंगे। यदि आप इन विषयों पर किसी भी प्रकार की विशेषज्ञ सलाह या परामर्श चाहते हैं तो हमें निम्नलिखित पते पर संपर्क कर सकते हैं:

नाम : इंडिया बुक ऑफ रिकार्ड्स

पता : बी-121, द्वितीय तल, ग्रीनफील्ड्स, फरीदाबाद, हरियाणा-121010

ई-मेल : healwithoutpill@gmail.com

मोबाइल : 9313378451

वेबसाइट : www.biswaroop.com

यदि आप अपने संस्थान में माइंड बॉडी वर्कशॉप आयोजित करने के लिए डॉ0 बिस्वरूप राय चौधरी को निमंत्रित करना चाहते हैं तो कृपया ऊपर दिए गए पते पर संपर्क करें।

Extra ordinary feats...
... Extra ordinary people

The Remarkable ... Revealed

As India has grown and changed, India Book of Records has been there to record all the amazing facts and feats. From silver screen to shocking stunts, from business to books, body and back flips, the best, the most, the longest, the shortest, the highest, the lowest.....the most extraordinary in an extraordinary India are all here in this exciting edition of India Book of Records.

The Book of Possibilities

For making or breaking a record
contact: 09999436779

India Book of Records
B-121, 2nd Floor, Greenfields, Faridabad-121010 (Haryana), India
Ph.:+91-129-2510534, 09999436779
E-mail:indiabookofrecords@gmail.com
Website: www.indiabookofrecords.in

When GOD himself is the DOCTOR, no one can die of ILLNESS

HEAL WITH OUT PILL

Incurable⇨Cure within

व्हीटग्रास रूपी अमृत का वरदान भगवान गणेश तथा जीसस क्राइस्ट की ओर से प्राप्त हुआ है जो सभी रोगों का निदान कर सकता है। संसार भर के 100 से भी अधिक मेडिकल यूनिवर्सिटिस में हुए अध्ययन एवं शोधों से भी यह प्रमाणित हुआ है कि यह एक ऐसा रामबाण है जो मानव जाति के सभी रोगों का निदान सफलतापूर्वक कर सकता है। और आजीवन स्वस्थ रहने की राह दिखाता है।

व्हीटग्रास के बारे और अधिक जानकारी के लिए पढ़ें...

Live Wheatgrass Tray at your Doorstep

PRODUCTS AVAILABLE

- Live Wheatgrass Trays@home (₹100/-per tray)
- Wheatgrass Juicing Kit(₹1500/-)
- Organic Wheat grain and Manure Pack (₹900/-per month)
  (30 pouches organic wheat + 30 pouches organic manure)
- किताब गेहूं के ज्वारे (₹175/-)
- Certified Wheatgrass Therapist Course

FRANCHISE ENQUIRY SOLICITED

Thalassemia
Diabetes
High / Low Blood Pressure
Cancer
Constipation
Coronary heart Diseases
Obesity
Migraine
Acidity
Arthritis
Osteoporosis
Asthma
Kidney Failure
Depression
Cirrhosis
Ulcer
Chronic Liver Diseases
Thyroid
Anaemia
Anorexia
Bad Breath
Common Cold
Dengue
Indigestion
Kidney stones
Acne
Boils
Jaundice

For more information contact:
India Book of Records
www.indiabookofrecords.in
B-121, 2nd Floor, Green Fields, Faridabad-121010 (Haryana), Ph.: +91-9313378451,
E-mail: healwithoutpill@gmail.com

LIVE WHEATGRASS TRAY @ HOME